[प्रथम माला] ओ३म् [ट्रैक्ट संख्या १

ईश्वर और उसकी पूजा

" जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत हो जाता है, वैसे ही परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूट कर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं"

--सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ७

सम्पादक

स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०

प्रकाशक

गंगाप्रसाद उपाध्याय ट्रैक्ट विभाग
आर्य समाज, चौक, प्रयाग ।

प्रति सैकड़ा २५ रु०] चतुर्थ बार १९८० [मूल्य ३० पैसे

ओ३म्

ईश्वर और उसकी पूजा

पाप और दुःख से बचने का एक ही उपाय है अर्थात् ईश्वर को जानो, उसका स्मरण करो और उसकी आज्ञा का पालन करो। पूजा तो सभी करते हैं परन्तु जब तक हम यह न जानें कि ईश्वर क्या है, और उसकी हमारे लिये क्या आज्ञा है, हम उसका कैसे ध्यान करें उस समय तक हमारे परिश्रम का कोई फल नहीं निकल सकता। जिस पुत्र ने पिता की आज्ञा जानने का यत्न नहीं किया, जिसे यह नहीं मालूम कि मेरा पिता कैसी बातों से प्रसन्न होता है और किस प्रकार के काम उसको भले लगते हैं, वह अपने पिता को कैसे संतुष्ट करेगा। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वेद-शास्त्रों में ईश्वर के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उस पर विचार करें और सच्चिदानन्द परमेश्वर की भक्ति किया करें। यों तो सभी चाहते हैं कि हमको ईश्वर का दर्शन हो जाय, हम पापों से छूट कर मुक्ति को प्राप्त कर सकें परन्तु सच और झूठ का ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करने वाले बिरले ही हैं।

सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है :—

'समाधिनिर्धूत मलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् ।

न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

यह उपनिषद् का वचन है । जिस पुरुष के समाधियोग से अविद्यादि मल नष्ट हो गए हैं । आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त जिसने लगाया उसको जो परमात्मा के योग का सुख होता है वाणी से कहा नहीं जा सकता क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अंतःकरण से ग्रहण करता है । उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है । अष्टांग योग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी रूप से प्रत्यक्ष करने के लिये जो जो काम करना होता है वह सब करना चाहिये—

तत्राहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥

[योगशा० साधनपादे । सू० ३० ॥]

इत्यादि सूत्र पातञ्जल योग शास्त्र के हैं । जो उपासना आरम्भ करना चाहे उसके लिए यही आरम्भ है कि वह किसी से बैर न रक्खे, सर्वदा सबसे प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी

न बोले, चोरी न करे, सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो लंपट न हो और निरभिमानी हो, अभिमान कभी न करे । ये पाँच प्रकार के नियम मिल के उपासना योग का प्रथम अंग है ।

शौच सन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

[योगशा० साधनपादे सू० ३२ ॥]

राग द्वेष छोड़ भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहे, धर्म से पुरुषार्थ करने से लाभ में न प्रसन्नता और न हानि में अप्रसन्नता करे। प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे, सदा सुख दुःखों का सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे। अधर्म का नहीं, सर्वदा सत्य शास्त्रों को पढ़े पढ़ावे, सत्पुरुषों का संग करें और "ओ३म्" इस एक परमात्मा के नाम का अर्थ विचार कर नित्यप्रति जप करे, अपने आत्मा को परमेश्वर के अनुकूल समर्पित कर देवे। इन पाँच प्रकार के नियमों को मिला के उपासनायोग का दूसरा अंग कहाता है। इसके आगे छः अंग योगशास्त्र व ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में देख लेवे । जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जा कर आसन लगा प्राणायाम कर वाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक मन को नाभि प्रदेश में व हृदय कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो जाने से संयमी होवे । जब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र

होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है, नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ा कर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो आठ पहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है। वहाँ सर्वज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेष, रूप, रस गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक मान अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ़ स्थिर हो जाना निर्गुणोपासना कहाती है। इसका फल–जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत हो जाता है वैसे ही परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दु:ख छूट कर परमेश्वर के गुण-कर्म स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं इसलिये परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये। इससे इसका फल पृथक होगा परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दु:ख प्राप्त होने पर भी न घबरायेगा और सबको सहन कर सकेगा क्या यह छोटी बात है ! और जो परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों के सुख के लिये दे रक्खे हैं उसका गुण भूल जाना ईश्वर ही को न मानना, कृतघ्नता और मूर्खता है।

(प्रश्न) जब परमेश्वर के श्रोत्र, नेत्रादि इन्द्रियाँ नहीं हैं फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है ?

उत्तरः—अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुश्चश्शृणोत्य-कर्णः ।
स वेत्तिविश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्रयं पुरुषं पुराणम् ॥

[श्वेताश्वेतर उपनिषद् अ० ३ ॥ मं० १९ ॥]

परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपनी शक्तिरूप से सबका रचन, ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान, चक्षु का गोलक नहीं, परन्तु सबको यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बात सुनता, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत को जानता है और उसकी अवधि सहित जानने वाला कोई भोनहीं। वह इन्द्रियों और अन्तःकरण के बिना अपने सब काम अपने सामर्थ्य से करता है।

प्रश्न--उसको बहुत से मनुष्य निष्क्रिय और निर्गुण कहते हैं ?

उत्तर—न तस्यकार्य्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान- बल क्रिया च ॥

[श्वेताश्वेतर उपनिषद् अ० ६ । मं० ८]

परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य और उसको करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं, न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त

क्रिया है वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती है। जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय न कर सकता इस लिये वह विभु तथापि चेतन होने से उसमें क्रिया भी है।

प्रश्नः--जब वह क्रिया करता होगा तब अन्तवाली क्रिया होती होगी वा अनन्त ?

उत्तरः--जितने देशकाल में क्रिया करना उचित समझता है, उतने ही देश काल में क्रिया करता है। न अधिक न न्यून, क्योंकि वह विद्वान् है।

प्रश्नः--परमेश्वर अपना अन्त जानता है वा नहीं ?

उत्तरः--परमात्मा पूर्णज्ञानी है; क्योंकि ज्ञान उसको कहते हैं कि जिससे ज्यों का त्यों जाना जाय अर्थात् जो पदार्थ जिस प्रकार का हो उसको उसी प्रकार जानने का नाम ज्ञान है, जब परमेश्वर अनन्त है तो अपने को अनन्त ही जानना ज्ञान है, उससेविरुद्ध अज्ञान अर्थात् अनन्त को सान्त और सान्त को अनन्त जानना भ्रम कहलाता है "यथार्थ दर्शनं ज्ञानमिति" जिसका जैसा गुण कर्म, स्वाभाव हो उस पदार्थ को वैसा ही जानकर मानना ही ज्ञान और विज्ञान कहाता है इससे उल्टा अज्ञान, इसलिये:--

क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः

[योग सू० समाधिपादे। सू० २४ ॥]

जो अविद्यादि क्लेश कुशल अकुशल, इष्ट अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है वह सब जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है।"........................

"प्रश्न—ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं क्योंकि "अज एकपात्" " सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्" ये यजुर्वेद के वचन हैं इत्यादि वचनों से [सिद्ध है कि] परमेश्वर जन्म नहीं लेता।

प्रश्न--

यदा यदा धर्मस्यग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानंधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

[भ० गी० अ० ४ । श्लोक० ७ ॥]

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जब जब धर्म का लोप होता है तब तब मैं शरीर धारण करता हूं।

उत्तर--यह बात वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं, और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि "परोपकाराय सतां विभूतयः" परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन, होता है। तथापि इससे श्री कृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

प्रश्न--जो ऐसा है तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार होते हैं और इनको अवतार क्यों मानते हैं ?

उत्तर--वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहकाने और अपने आप अविद्वान् होने से भ्रम जाल में फँस के ऐसी अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं।

प्रश्न—जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके ?

उत्तरः--प्रथम जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये बिना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कोड़ी के समान नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीर में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनन्त-गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिये जन्म मरण युक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है ? और जो कोई कहे कि भक्तजनों के उद्धार करने के लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य उसमें है। क्या ईश्वर के पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् का बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस रावणादि का वध और गोवर्धनादि पर्वतों का उठाना बड़े कर्म हैं ? "न भूतो न भविष्यति" ईश्वर के सदृश कोई न है, न होगा। युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया व मूठी में धर लिया ऐसा

कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सबमें व्यापक है। इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता है। जाना व आना वहाँ हो सकता है जहाँ न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया ? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला ? ऐसे ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा। इसलिये परमेश्वर का आना जाना जन्म मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता इसलिए "ईसा" आदि भी ईश्वर के अवतार नहीं ऐसा ही समझ लेना क्योंकि राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोकदुःख, सुख, जन्म मरण आदि गुणयुक्त होने से मनुष्य थे ।

प्रश्न--ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं ?

उत्तर--नहीं ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय और सब मनुष्य महापापी हो जायँ, क्योंकि क्षमा की बात सुनते ही उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाय। जैसे राजा अपराध को क्षमा कर दे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक अधिक बड़े-बड़े पाप करे, क्योंकि राजा अपराध क्षमा कर देगा, उसको भी भरोसा हो जाय की राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे। और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डर कर पाप करने में प्रवृत्त हो जायेंगें। इसलिये सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं ।

प्रश्नः—जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र !

उत्तरः अपंने कर्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है। "स्वतन्त्रः कर्त्ता" यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है वही कर्ता है।

प्रश्नः—स्वतन्त्र किसको कहते हैं ?

उत्तरः—जिसके आधीन शरीर, प्राण इन्द्रिय और अन्तः कर्ण आदि हों। जो स्वतन्त्र न हो उसको पाप पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता क्योंकि जैसे भृत्य, स्वामी और सेना, सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मार के अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता से काम सिद्ध हो तो जीव को पाप या पुण्य न लगे, उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। नरक स्वर्ग अर्थात् दुःख सुख की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे। जैसे किसी मनुष्य ने शस्त्र विशेष से किसी को मार डाला तो वही मारने वाला पकड़ा जाता है और वही दण्ड पाता है; शस्त्रः नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप, पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र, परन्तु जब पाप कर चुकता है तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन हो कर पाप के फल भोगता है। इसलिये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःख रूप फल भोगने में परतन्त्र होता है।

प्रश्नः—जो परमेश्वर जीव को न बनाता और सामर्थ्य न देता तो जीव कुछ भी न कर सकता इसलिये परमेश्वर की प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है।

उत्तरः--जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है, जैसा ईश्वर और जगत का उपादान कारण निमित्त है और जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाये हुये हैं। परन्तु वे जीव के आधीन हैं। जो कोई मन कर्म, वचन से पाप-पुण्य करता है, वही भोगता है, ईश्वर नहीं जैसे किसी ने पहाड़ से लोहा निकाला, उस लोहे को किसी व्यापारी ने लिया, उसकी दुकान से लोहार ने लेकर तलवार बनाई, उससे किसी सिपाही ने तलवार ले ली, फिर उससे किसी को मार डाला। अब यहाँ जैसे लोहे को उत्पन्न करने उससे लेने, तलवार बनाने वाले वा तलवार को राजा पकड़ कर दण्ड नहीं देता किन्तु जिसने तलवार से मारा वही दण्ड पाता है, इसी प्रकार शरीरादि की उत्पत्ति करने वाला परमेश्वर उसके कर्मों का भोक्ता नहीं होता किन्तु जीव को भुग ने वाला होता है। जो परमेश्वर कर्म करता तो कोई जीव पाप नहीं करता क्योंकि परमेश्वर पवित्र और धार्मिक होने से किसी जीव को पाप करने में प्रेरणा नहीं करता। इसलिये जीव अपने काम करने में स्वतन्त्र। जैसे जीव अपने कर्मों के करने में स्वतन्त्र है वैसे ही परमेश्वर भी अपने कर्मों के करने में स्वतन्त्र है।

प्रश्नः--जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है?

उत्तरः—दोनों चेतन स्वरूप हैं। स्वभाव दोनों का पवित्र अविनाशी और धार्मिकता आदि हैं, परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय सबको नियम में रखना जीवों, को पाप पुण्यों के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म है और जीव के सन्तानोत्पत्ति उनका पालन, शिल्प विद्यादि अच्छे-बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्यज्ञान आनन्द अनन्त बल आदि गुण हैं और जीव के :—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुख दुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति ॥

[न्याय० अ० १। १। सू १० ॥]

प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः ॥

सुखःदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्चात्मनोलिगानि ॥

[वैशेषिक द० अ० ३। आ० २। सू० ११]

(इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा बैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहिचानना ये तुल्य हैं। परन्तु वैशेषिक में. (प्राण) प्राण वायु को बाहर से भीतर को लाना (अपान) प्राणवायु बाहर निकालना (निमेष) आँख को मींचना (उन्मेष) आँख को खोलना (मन) निश्चय स्मरण और अहंकार करना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना (अन्तर्विकार) भिन्न भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष शोकादियुक्त होना ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न है इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी, क्योंकि वह स्थूल नहीं है, जब तक आत्मा देह में

होता है तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं; और जब शरीर छोड़ चला जाता है तब ये गुण शरीर में नहीं रहते हैं। जिसके होने से जो हो और न होने से न हो वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्य्यादि के न होने से प्रकाशादि का न होना होने से होना है वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुण द्वारा होता है।

प्रश्नः—परमेश्वर सगुण है या निर्गुण ?

उत्तरः—दोनों प्रकार है ?

प्रश्नः—भला एक घर में दो तलवारें कभी रह सकती हैं। एक पदार्थ मे सगुणता और निर्गुणता कैसे रह सकती है।

उत्तरः जैसे जड़ के रूप आदि गुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में नहीं हैं वैसे ही चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं हैं इसलिए" यद गुणैस्सह वर्त्तमानं तत्सगुणम् "गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथगभूतं तन्निर्गुणम" जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण है। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसमें केवल निर्गुणता या केवल सगुणता हो, किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रूप आदि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है।

प्रश्न:—संसार में निराकार को निर्गुण और साकार को सगुण कहते हैं। अर्थात् जब परमेश्वर जन्म नहीं लेता तब निर्गुण और जब अवतार लेता है तब सगुण कहाता है !

उत्तर:—यह कल्पना केवल अज्ञानी और अविद्वानों का है। जिसको विद्या नहीं होती वे पशु के समान यथा तथा बर्राया करते हैं जैसे सन्निपात ज्वर युक्त मनुष्य अण्डबण्ड बकता है वैसे ही अविद्वानों के कहे या लेख को व्यर्थ समझना चाहिये।

प्रश्न:—परमेश्वर रागी है या विरक्त ?

उत्तर:—दोनों में नहीं क्योंकि राग अपने से भिन्न उत्तम पदार्थों में होता है सो परमेश्वर से कोई पदार्थ पृथक् व उत्तम नहीं इसलिये उसमें राग का सम्भव नहीं और जो प्राप्त को छोड़ देवे उसको विरक्त कहते हैं। ईश्वर व्यापक होने से किसी पदार्थ को छोड़ ही नहीं सकता इसलिये विरक्त भी नहीं।

प्रश्न:—ईश्वर में इच्छा है वा नहीं !

उत्तर:—वैसी इच्छा नहीं क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त उत्तम और जिसकी प्राप्ति से सुख विशेष होवे उसकी होती है तो ईश्वर में इच्छा कैसे हो सके, न उससे कोई अप्राप्त पदार्थ, न कोई उससे उत्तम। और पूर्णसुख युक्त होने से सुख की अभिलाषा भी नहीं है इसलिये ईश्वर में इच्छा का तो सम्भव नहीं किन्तु ईक्षण अर्थात् सब प्रकार की विद्या का दर्शन और सब सृष्टि का करना कहाता है, वह ईक्षण है।"

(सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ७)

॥ ओ३म् ॥

ईश्वर का नाम

ईश्वर की सत्ता मानने वालों, ईश्वर विश्वासियों ने ईश्वर के जितने नाम रखे हैं वे सब नाम ईश्वर के गौण नाम हैं। निज नाम नहीं। क्योंकि मनुष्य परिश्रम करके ईश्वर के गुणों को ही जान सकता है। हम साधारण से साधारण व्यक्ति के गुणों को ही जान सकते हैं। पर उसके नाम को नहीं जान सकते जब तक वह व्यक्ति स्वयं अपना नाम न बतावे हम उसके निज नाम को जानने में असमर्थ रहेंगे।

"अव्यक्त" भी ईश्वर का गुण है नाम नहीं। जब तक ईश्वर स्वयं न कहे कि मेरा यह नाम है तब तक ईश्वर का नाम निर्धारण करने में मनुष्य असमर्थ रहेगा। नाम को तो नाम वाला ही स्वयं बता सकता है कि मेरा यह नाम है।

वेद ईश्वर की वाणी है। वेद में मनुष्य का हाथ नहीं। वेद में परमात्मा ने अपना नाम स्वयं बताया है कि मेरा नाम—

"सोऽसावहम् ओ३म्"

(यजुर्वेद ४० अध्याय १७ मंत्र)

अर्थात्–मेरा नाम ओ३म् है या मैं ओ३म् नाम वाला हूँ। जब नाम वाला स्वयं कहता है कि मेरा नाम ओ३म् है तब हमें उस ईश्वर का ओ३म् नाम स्वीकार कर लेना चाहिये। अन्य सब नाम गौण नाम हैं। जो मनुष्य ने उसके गुण जाने और उन गुणों पर उसके नाम मनुष्य ने रचे अतः वे सब नाम गौण नाम है।

विशेष

ऊपर वाला "सोऽसावहम् ओ३म्" यह यजुर्वेद का अन्तिम मन्त्र है। ऋग्वेद में ज्ञान काण्ड है। उससे अगले यजुर्वेद में कर्म काण्ड है। उससे अगले सामवेद में उपासना काण्ड प्रारम्भ होनेवाला है अतः सामवेद प्रारम्भ होने से पूर्व यजुर्वेद के अन्त में ईश्वर को अपना निज नाम बताना आवश्यक हो गया कि मेरे इस ओ३म् निज नाम से मनुष्यों उपासना काण्ड में मेरा भजन करना।

ईश्वर का प्रत्यक्ष

"अक्षिः चष्टे" जिस साधन से किसी का दर्शन हो उसको 'अक्षि' कहते हैं। उस साधन से जो दर्शन होता है उसको 'प्रत्यक्ष' कहते हैं। चक्षु साधन से रूप का प्रत्यक्ष होता है। नासिका साधन से सुगन्ध, दुर्गन्ध का प्रत्यक्ष होता है। कर्ण साधन से शब्द का प्रत्यक्ष होता है। जिह्वा साधन से रस का प्रत्यक्ष होता है। त्वचा साधन से शीत उष्ण का प्रत्यक्ष होता है। मन साधन से सुख-दुःख का प्रत्यक्ष होता है।

(इसी प्रकार आत्मा से परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है) चक्षु केवल रूप का ही प्रत्यक्ष कर सकती है। रस शब्द आदि का प्रत्यक्ष चक्षु नहीं कर सकती इसी प्रकार चक्षु परमात्मा का प्रत्यक्ष नहीं कर सकती है।

जिस नियत साधन से जिसका प्रत्यक्ष होता है उसी साधन के द्वारा उसके प्रत्यक्ष में आनन्द आता है। यदि रस, शब्द आदि का चक्षु से प्रत्यक्ष हो तो कोई आनन्द नहीं आ सकता। इसी प्रकार आत्मा से ही परमात्मा के प्रत्यक्ष होने में आनन्द आता है।

जब कि इस जीवात्मा का ही चक्षु से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता तो परमात्मा तो जीवात्मा की उपेक्षा बहुत सूक्ष्म है। जब मनुष्य की मृत्यु होती है तब सब देखते रह जाते हैं और सबके देखते देखते जीवात्मा निकल जाता है और कोई भी इन्द्रिय उसे प्रत्यक्ष नहीं कर पाती है।

यदि परमात्मा इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होनेवाला होता तो जब मोक्ष में जीवात्मा रहता है तब उसके पास इन्द्रियाँ नहीं होती हैं उस समय परमात्मा का प्रत्यक्ष जीवात्मा कैसे करेगा। इसलिये ऋषियों ने कहा है कि—

"पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूः।
तस्मात् पराङ पश्यति नान्तरात्मन्"॥

अर्थात्—इन्द्रियाँ वहिर्मुखी हैं ये अन्दर स्थित आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकतीं। अतः जो जिह्वा से प्रत्यक्ष न हो चक्षु से प्रत्यक्ष हो वह रस ही नहीं है। जो कान से न सुनाई दे और आँख से दिखाई दे वह शब्द ही नहीं है। इत्यादि।

इसी प्रकार जो आत्मा से प्रत्यक्ष न होकर आँख से दिखाई दे वह परमात्मा नहीं है।

भगवान का ज्योतिर्मय स्वरूप

भगवान् का ज्योतिर्मय स्वरूप है इसका यह अर्थ नहीं कि वह ज्योति आंखों से दीखने वाली है जैसे—

सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः। अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः।।

भगवान का ज्योतिर्मय स्वरूप इनसे भिन्न है वह ज्योति सूर्य के प्रकाश से भी भिन्न है। वह ज्योति ऐसी है कि—

'आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म'

वह ज्योति 'आपः' = सर्वव्यापक है। वह ज्योति 'रसः' = आनन्द रूप है। वह ज्योति 'अमृतम्' = वह ऐसी ज्योति है जिसके पाने से जीवात्मा अमर हो जाता है।

एक मिथ्या भ्रान्ति

शरीर के अन्दर एक पोली जगह थोड़ी सी है। वर्तमान योगाभ्यासी उस पोली जगह में एक प्रकाश देख लेते हैं और समझ लेते हैं कि यही ईश्वर है वह हमने देख लिया। यह कोरा भ्रम है।

ईश्वर की ज्योति तो **'स पर्यगात्'** सर्वत्र व्याप्त प्रतीत होती है। जब उस ज्योति का प्रत्यक्ष होता है तब **'चित्रम्'** जीवात्मा आश्चर्य चकित हो जाता है। और यह ज्योति **'देवानाम् उदगात्'**

सत्य प्रतिष्ठा वाले देवों को ही प्रत्यक्ष होती है। और जब यह ज्योति प्रत्यक्ष जिस किसी को हो जाती है उसे **'अनीकम्'** महान बल प्राप्त हो जाता है। और **'चक्षुः'** जिस प्रकार आंख वाले को सब दीखता है। इसी प्रकार यह ज्योति रूप चक्षु जिसे प्राप्त हो जाती है उसे परमाणु परमाणु सब दीखने लगता है।

ज्ञाते तु कस्मिन् विदितं जगत् स्यात्
सर्वात्मके ब्रह्मणि पूर्वा रूपे।

अर्थात्–ब्रह्म रूप ज्योति चक्षु जिसे प्राप्त हो जाती है उसको समस्त जगत् का ज्ञान हो जाता हैं। यह ज्योति किसी एक स्थान में थोड़ा सा प्रकाश रूप नहीं है। वह ज्योति –

आ प्राद्यावापृथिवीं अन्तरिक्षं ९ सूर्यं आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।

अर्थात्–जब यह ज्योति प्रत्यक्ष होती है तब पहाड़, धरती, आसमान कुछ दृष्टिगत नहीं रहता। सर्वत्र वह ही नजर आता है और वह ज्योति के साक्षात्कार करनेवाला स्पष्ट देखता है कि सबका संचालन उसी से हो रहा है। अतः यह ज्योति सर्वत्र व्याप्त दीखती है किसी एक छोटे से स्थान पर चमक जैसी नहीं है।

आत्मज्ञानी गुरु

जो आत्मज्ञानी गुरु हमें आत्मज्ञान कराना चाहता है उसको आत्मज्ञान किसी अन्य आत्मज्ञानी गुरु ने कराया होगा। उसके गुरु को उसके भी पूर्व के आत्मज्ञानी गुरु ने आत्मज्ञान कराया होगा। इस प्रकार पूर्व पूर्व यह परम्परा चली जाने पर जो सबसे पहला

आत्मज्ञानी गुरु था उसको आत्मज्ञान किसने कराया। यदि कहो कि उसको तो आत्मज्ञान स्वयं हो गया तो फिर यह सिद्धान्त बनता है कि बिना आत्मज्ञानी गुरु के भी आत्मज्ञान हो सकता है।

यदि नहीं तो उससे पूर्व जब कोई पुरुष आत्मज्ञानी है ही नहीं तो मानना पड़ेगा कि—

स पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्।

(सांख्य दर्शन)

अर्थात्-सबका आदि गुरु परमेश्वर है उसने आरम्भ में आत्मज्ञान कराया। वह परमेश्वर वेद द्वारा ही आत्मज्ञान का उपदेश कर सकता है।

अतः अब भी जो आत्मज्ञानी गुरु है यदि वह वेदानुसार आत्मज्ञान का उपदेश करता है तब तो वह आत्मज्ञानी गुरु ठीक है अन्यथा नहीं।

प्राचीन साहित्य में बताया है कि जिसे आरम्भिक योग भी आता है उसमें भी कुछ लक्षण दीखने लगते हैं जैसे—

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादः स्वर सौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्र पुरीषमल्पं योग प्रवृत्ति प्रथमां वदन्ति॥

इसके अतिरिक्त पूर्णयोगी आत्मज्ञानी के भी लक्षण इससे कहीं अधिक हैं। जो शास्त्रों में वर्णित हैं।

आत्मज्ञान जो योग द्वारा होता है उसका सही वर्णन वेदों में ही है। अन्य सब पाखण्ड है। वेद बताता है कि—

'युञ्जते मनः उतयुञ्जते धियः'। (यजुर्वेद)

स्वधर्म में लीन रहना

स्वधर्म शब्द का प्रयोग गीता से प्रारम्भ हुआ है। यहाँ इसका अभिप्राय अन्य है।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः

स्वधर्मो विगुणः श्रेयः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्। (गीता)

अर्थात्–स्वधर्म को नहीं छोड़ना चाहिये। स्वधर्म गुण रहित भी अच्छा है पर धर्म की अपेक्षा। भगवदगीता में इसका दृष्टिकोण यह है कि मनुष्य में जो स्वाभाविक प्रवृत्ति जिस वर्ण के कार्य करने की है उसमें मनुष्य को प्रसक्त रहना चाहिये। अपनी प्रवृत्ति के विरुद्ध वर्ण के कार्य में रत होने पर सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है।

यदि स्वधर्म का अर्थ भगवान किया जावे तो संगति का प्रकार अन्य होगा। उसके दो स्वरूप हैं---

(१) जीवात्मा प्रत्येक शरीर में जा सकता है। स्त्री, पुरुष हो सकती है पुरुष, स्त्री हो सकता है। पशु पक्षी मनुष्य योनि में आ सकते हैं और पुरुष योनि वाला पशु पक्षी योनि में जा सकता है अतः प्रत्येक योनि में समान आत्मा को देखने वाला समदर्शी हो जाता है।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः। (गीता)

(२) स्वधर्म में लीन का अर्थ भगवान् में लीन होना है तो उसका प्रकार यह है कि–

ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।

अर्थात्–ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म ही हो जाता है । उसका प्रकार यह है कि अग्नि कहता है कि मुझ पर जो कुछ रखोगे जला दूंगा । पर यह बात लोहा नहीं कह सकता । परन्तु जब लोहा अग्नि में तप्त होकर अग्निमय हो जाता है तब लोहा भी यही बोली बोलता है कि मुझ पर कुछ रखोगे तो जला दूंगा । इसी प्रकार ब्रह्मलीन व्यक्ति भी ब्रह्म की बोली बोलते हैं जैसे भगवान् कृष्ण बोले कि– **मामुपास्व** । श्रीकृष्ण से पूर्व भी यही बोली प्रतर्दन भी बोला था । जिसको व्यास ने समझाया कि–

न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसम्बन्ध भूयाह्यास्मिन् ।

अर्थात्–यह वक्ता अपने आप को नहीं कह रहा है । प्रत्युत अध्यात्म सम्बन्ध पराकाष्ठा का हो जाने पर यह बोली बोलने का अधिकार मिल जाता है लोहे के समान । पृथक होने पर लोहा लोहा है ।

लेखक : **विश्वश्रवा व्यास**
एम. ए. वेदाचार्य

मानव कल्याण केन्द्र
१८७, दादी सेठ अग्यारी लेन, बम्बई–४०० ००२.
द्वारा आयोजित

प्रथम अखिल भारतीय सर्वधर्म सम्मेलन में विचारार्थ प्रश्नों के उत्तर

प्रकाशन : **आर्य समाज स्थापना शताब्दि समारोह समिति**
आर्य समाज, शान्ताक्रुज, वी. पी. रोड, बम्बई–५४. फोन : ५३४२६३

वे क्षण जब नास्तिक भी आस्तिक बन जाते हैं

लेखक : पूज्यपाद स्वामी वेदमुनि परिव्राजक

प्रकाशक : वैदिक संस्थान, बालावाली
जिला बिजनौर (उ० प्र०)

दानकर्त्ता : श्री केशवशरण, एडवोकेट
प्रधान, आर्य समाज, फतेहपुर (उ० प्र०)

पुण्य लोक व्यवहार संहिता

१. पुण्य लोक का प्रकाशन प्रत्येक अंग्रेजी महीने की प्रथम तिथि को होता है।

२. अंग्रेजी महीने की पन्द्रह तिथि तक पुण्य-लोक न मिलने पर सूचित कीजिए, तुरन्त दूसरी प्रति भेज दी जाएगी।

३. पांच ग्राहक बनाने वाले सज्जन को एक वर्ष तक तथा दस ग्राहक बनाने वाले सज्जन को दो वर्ष तक पुण्य लोक बिना मूल्य भेजा जाएगा।

४. पुण्य-लोक के लिए लेख और कविता 'सम्पादक पुण्य-लोक बालावाली जिला बिजनौर उत्तर-प्रदेश' के पते पर भेजिए। संशोधनाधिकार सम्पादक का है।

५. व्यवस्था विषयक पत्र, वार्षिक मूल्य, विज्ञापन संबंधी पत्र तथा धन 'व्यवस्थापक पुण्य-लोक बालावाली, जिला बिजनौर, उत्तर प्रदेश' को भेजिए।

६. उत्तर के लिए उत्तर पत्र या लिफाफे में टिकट रख कर भेजिए।

७. पुण्य-लोक की विज्ञापन दर प्रति वर्ष:–

बाह्य आवरण पृष्ठ सम्पूर्ण	२००)	आधा १२५)	चौथाई ७५)
भीतर ,, ,,	,, १५०)	,, ८०)	,, ५०)
अन्य पृष्ठ ,,	,, १२०)	,, ७०)	,, ४०)

आवश्यकता ५) प्रति मास

पत्रों को सुविधा:—पुण्य-लोक में प्रकाशित कोई भी लेख बिना अनुमति छापा जा सकता है किन्तु पुण्य-लोक और लेखक के नाम का उल्लेख अवश्यमेव करना होगा तथा जो भी पुण्य-लोक से लेख उद्धृत किया जाए, उसकी प्रति वैदिक संस्थान, बालावाली, जिला बिजनौर, उत्तर प्रदेश को भेजी जाय।

—व्यवस्थापक

ओ३म्

वे क्षण जब नास्तिक भी आस्तिक बन जाते हैं

लेखक : पूज्यपाद स्वामी वेदमुनि परिव्राजक

प्रकाशक : वैदिक संस्थान, बालावाली
जिला बिजनौर (उ० प्र०)

दानकर्त्ता : श्री केशवशरण, एडवोकेट
प्रधान, आर्य समाज, फतेहपुर (उ० प्र०)

प्रथमावृत्ति
गणतन्त्र दिवस २६-१-६६]

वसन्त पंचमी २०२२ विक्रमी
मूल्य ५ पैसे

को सुनकर गुरुदत्त ने कहा, "महर्षि आप के उत्तर से मेरी वाणी तो बन्द हो गई किन्तु मेरा मन नहीं मानता।" महर्षि ने सहज स्वभाव से धीमे स्वर में कहा, "गुरुदत्त ! मन को मनाना तो परमात्मा का कार्य है, बुद्धि से तो केवल बुद्धि के प्रश्नों के उत्तर दिये जा सकते हैं सो मैंने दे दिये।"

थोड़ी देर के पश्चात् महर्षि दयानंद ने सभी उपस्थित जनों को कहा, "आप लोग कमरे से बाहर हो जाइये, जिससे वायु शुद्ध हो, मैं प्राणायाम करूंगा।" इतना सुनते ही सब लोग बाहर चले गये। स्वामी जी ने प्राणायाम के पश्चात् दीर्घ निःश्वास के साथ कहा, "तेरी इच्छा पूर्ण हो, प्रभु ! तेरी इच्छा पूर्ण हो, तूने अच्छी लीला की" और इन शब्दों के साथ उन के मुखमण्डल पर अद्भुत आभा और अमित तेज के साथ-साथ एक मृदु तथा आनन्ददायिनी मुस्कान भी होठों पर खेल रही थी। अमावस्या की अंधियारी में दीपावलि के धीमे-धीमे टिमटिमाते दीपकों के मध्य जब भगवान् दयानन्द का जीवन-दीप निर्वाण की ओर जा रहा था गुरुदत्त यह कहते हुये 'ऋषि तूने मरते हुये मुझ नास्तिक को आस्तिक बना दिया' नतमस्तक हो गये।

लोगों ने पूछा, 'विद्यार्थी जी क्या देखा ?' विद्यार्थी जी ने उत्तर दिया, 'एक अमित तेज और असीम उल्लास जिसे देखकर यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि इतने सुन्दर तथा बलिष्ठ शरीर और विद्वतापूर्ण जीवन को छोड़ते हुये दुःख की अपेक्षा आनन्द की अनुभूति इसमे कहीं अधिक मूल्यवान, उपयोगी तथा उत्तम वस्तु की प्राप्ति के ही कारण है फिर चाहे लोग उसे गॉड (*God*) कहें, खुदा कहें अथवा परमात्मा कह कर पुकारें।

२१ नवम्बर १९६४ ई० की घटना है। सायंकाल के लगभग सवा सात बजे का समय था जब श्री सरनामदत्त आर्य को गोली मारी गई। आप उत्तर प्रदेश के जिला बिजनौर अन्तर्गत बाला-वाली स्थित वैदिक संस्थान से अपने घर खिरनी ग्राम जा रहे थे जो बालाबाली से लगभग २॥ मील के अन्तर पर है। मार्ग में दो व्यक्ति मिले, पारस्परिक परिचय हुआ और बातचीत करते हुए साथ २ चलने लगे। अंधेरा था ही, साथ में हथियार छिपाए हैं सरनामदत्त जी उनके विषय में यह सन्देह भी नहीं कर पाए, न उन्हें भी यह ध्यान था कि यह मेरी हत्या के लिए आए हैं। कुछ दूर तक साथ-साथ चलने के उपरान्त उक्त दोनों व्यक्ति लघुशंका के लिए मार्ग के दोनों ओर अर्थात् एक पूर्व दिशा और दूसरा पश्चिम दिशा को मुंह करके बैठ गये। हमारे विचार में लघुशंका की बात नहीं थी अपितु दोनों के मस्तिष्कों में खलबली मची हुई थी और दोनों इस चिन्ता में थे कि निशाना लगाया जाय या नहीं, प्राय: जैसा बुराई करने वाले प्रत्येक के मन और मस्तिष्क में बुराई करने से पहले हुआ करता है। इन दोनों ने भी उस परिस्थित से प्रभावित होकर लघुशंका का बहाना खोजा और एक बार सरनामदत्त जी के आगे निकल जाने पर आपस में पुनः विचार-विनिमय किया होगा तथा तत्पश्चात् यह सोचकर कि प्राप्त शिकार हाथों से निकला जा रहा है दोनों ने दौड़ लगाई और यह कहा कि "सरनामदत्त! ठहरो, कहां जाते हो? तुमने हम लोगों को बहुत परेशान कर रखा है"। कानों में यह आवाज आते ही सरनामदत्त जी पीछे देखने के लिए ज्योंही दायीं ओर को

मुड़ने लगे त्योंही गोली आकर उनके दाएं हाथ में लगी और कंधे और कोहनी के मध्य में हाथ को छेद कर पसलियों में प्रविष्ट हो गई। यदि वे घूमे न होते तो गोली पीठ में प्रवेश कर वक्ष(छाती)में प्रवेशकर पीठ को पारकर निकल जाती और घटनास्थल पर ही जीवन लीला समाप्त हो जाती किन्तु उधर गोली छूटी और उधर आप मुड़े। यदि कहीं बिना पुकारे ही गोली मार दी गई होती तो.........? जब वह दोनों व्यक्ति साथ साथ चल रहे थे तब भी गोली मार सकते थे, परन्तु यह सब होता किस प्रकार ?

गोली बाहु पर लगी और विचित्रता यह देखिये कि बाहु को बेध और बाहु की अस्थि को तोड़ और छेदकर जाने वाली गोली सीधी बाहु में से पार नहीं हुई नहीं तो फेफड़ो को समाप्त कर देती जिससे मृत्यु अवश्यम्भावी थी। गोली बाहु से आड़ी होकर नीचे की ओर चली गई और जा कर पसलियों में अटक गई, यदि कहीं थोड़ी और आगे आँखों पर पहुंच जाती तो भी घटनास्थल पर ही उनकी समाप्ति निश्चित् थी किन्तु वह लोकोक्तिध्रुव सत्य है कि "मारने वले से बचाने वाला अधिक बलवान है।"

(३)

२६ नवम्बर सन् १९६४ को बिजनौर नगर में प्रातः काल लगभग ८ बजे जब मैं जिला चिकित्सालय की ओर जा रहा था रा०इ०मा० विद्यालय के सामने तीन कुत्ते परस्पर उछलकूद मचा रहे थे जिनमें से एक कुत्ता मेरी ओर लपका और मेरे इतने निकट आगया कि उसके मुँह और मेरे बाएं पैर में कठिनता से आध इन्च की दूरी होगी। कुत्ते ने मुंह फैला ही

लिया था और उसके पैने नोकीले दाँत उसके भावी कार्य क्रम की भयंकरता का परिचय दे रहे थे। मेरे मस्तिष्क में उस समय शून्य की जैसी स्थिति थी। अगले ही क्षण दृश्य परिवर्तित हो गया। उस कुत्ते के दूसरे साथियों में से एक कुत्ता मुह फैलाए अत्यन्त तीव्र गति से आया और उसने आकर इस कुत्ते की गर्दन को अपने मुँह में दबा लिया और वह दोनों परस्पर लड़ने लगे। मुझे हंसी आ गई, कुछ क्षण तो वहीं खड़ा हंसता रहा और फिर हंसता तथा यह सोचता हुआ कि "जा को राखे साईयाँ मार सके न कोय" अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर चला गया।

(४)

१९५८ ई० के ग्रीष्म काल की घटना है। दिल्ली के धर्मपुरा क्षेत्र मे कुछ बालक-बालिकाएं छत पर खेल रहे थे। उन बालकों में से एक बालक जिस की आयु ३ और ४ के मध्य में थी खेलते-खेलते मुण्डेरी पर चढ़ गया और अकस्मात् नीचे आ गिरा। उसी समय शोर मच गया, कुक्कु गिर गया, कुक्कु गिर गया। उसी मकान के किरायेदारों में से किसीने पूछा, किस का कुक्कु? बच्चों ने बालक के पिता का नाम लिया, बालक की माता को जब जानकारी हुई तो मानो देह में प्राण ही नहीं रहे किन्तु फिर भी बालक की ममता के वशीभूत अन्य नरनारियों की भाँति वहभी घटनास्थल को ओर गिरती-पड़ती दौड़ चली। सड़क पर बड़ी भीड़ एकत्र हो गई, किन्तु यह देखकर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि कुक्कु सड़क पर से उठकर घर की ओर आ रहा है। साथ ही लोगों ने यह भी देखा कि तीन मंजिल ऊंचे मकान से गिर कर भी इस स्वल्प आयु बालक के शरीर में खरोंच तक भी नहीं लगी। जब कि नीचे डाँवर की

पक्कीसड़क थी और कई बार लोगों को सीढ़ी से फिसल कर मरते देखा गया है। एक ही बात उपस्थित जनों के मुख से सुनाई देरही थी कि जिसका रक्षक वह प्रभु है उस का मृत्यु भी कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

पाठक वृन्द ! क्या यह बताने को यह घटनायें पर्याप्त नहीं है कि कोई अज्ञात शक्ति है और वह प्रत्येक समय अपना कार्य कर रही है जिसे लोग परमात्मा कह कर पुकारते हैं। इति।

—०—

ओ३म्

भगत को दुर्गत

लेखक :

श्री विनोदानन्द

★

प्रकाशक :

सत्य प्रकाशन

वृन्दावन मार्ग, मथुरा :

छठीं बार २०००] मूल्य २५ पैसे

चेतावनी

[महाकवि श्री नाथूराम 'शंकर' शर्मा]

जब तलक तू हाथ में मन का न मनका लायगा,
तब तलक इस काठ की माला से क्या फल पायगा ॥१

भूल कर अज×को अजा ✱ का आजलौं चेरा रहा,
क्या इसी पाखण्ड से परमात्मा मिल जायगा ॥२

धर्म का धन छोड़ कर पूँजी बटोरी पाप की,
क्या इसी करतूत से धर्मात्मा कहलायगा ॥३

चाह की चिनगी से चेंका चैन फिर चित को कहाँ,
देख धरकर आग पर पारा न ठिक ठहरायगा ॥४

दान दीनों को न देकर नाम का दानी बना,
भोग के भूखे वहाँ जाकर बता क्या खायगा ॥५

लोभ-लीला के लिए रच रङ्गशाला राग की,
बोल बहुरङ्गी रङ्गीले गीत कब तक गायगा ॥६

स्वारथी उपकार औरों का कभी करता नहीं,
फिर तुझे संसार सारा किस लिए अपनायगा ॥७

जो तुझे भाती नहीं सबकी भलाई तो भला,
क्यों भोले भोइयो को भुल में भरमायगा ॥८

खेल में खोया लड़कपन भोग में जीवन गया,
भूल में भागी जरा क्या और जोवन आयगा ॥९

दूर प्यारे की पुरी है दिन किनारे आ चुका,
चल नहीं तो इस झमेले मेंपड़ा पछतायगा ॥१०

कण्ठ की घर-घर सुनेंगे अन्त को घर के खड़े,
घड़ी 'शङ्कर' घिरा घिर घेर में घबरायगा ॥११

भगत की दुर्गत

—श्री विनोदानन्द

जिस दिन भगत राधावल्लभ मरे लोगों को लगा कि भगतजी स्वर्गवासी हुए। परन्तु अभी मुझे नारदजी ने आकाशवाणी से सूचना दी है कि भगतजी नरक में भेज गये। अगर मैं कहूँ तो लोग विश्वास नहीं करेंगे पर यह है सत्य। उनको नरक में डाल दिया गया है और उन पर अनेक जघन्य पापों के आरोप लगाये गये हैं।

भगतजी मन्दिर में आधी-आधी रात तक कीर्तन करते थे। हर दूसरे तीसरे दिन वह किसी सेठ साहूकार से लाउडस्पीकर लगवा कर उस पर अपनी भक्त मण्डली सहित ढोलक, हारमोनियम, झांझ, घण्टा बजाकर कीर्तन कराते थे। पर्व और त्यौहारों पर तो चौबीस घण्टे और कभी-कभी कई दिन रात अखण्ड कीर्तन चलता था। एक-दो बार आस-पास के मौहल्ले वालों ने इस अखण्ड कोलाहल का विरोध किया तो भगतजी ने भक्तों की भीड़ इकट्ठी करली और दंगा-फिसाद करने पर उतर आये। कीर्तन और जोर-शोर से किया गया।

ऐसा ईश्वर भक्त जिसने असंख्य बार भगवान का नाम लिया, अनेक बार भगवान कृष्ण की रासलीलायें कराई, 'जो नगर की राम-लीला का मुखिया रहा, उसे नरक में भेजा जाय और अजामिल जिसने मरते समय एक बार अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लिया वह आज भी स्वर्ग में मजे लूट रहा है—यह अँधेर नहीं तो क्या है? भगवान के यहाँ भी अँधेर है।

भगत राधावल्लभ बड़े धड़ल्ले के साथ परलोक पहुँचे। इधर उधर घूम फिर कर एक फाटक की ओर बढ़े। चौकीदार से पूछा. स्वर्ग का प्रवेश द्वार यही है?

वह आगे बढ़ने लगे तो चौकीदार ने प्रवेश टिकिट माँगा।

भगतजी को क्रोध आ गया। बोले, टिकट। कैसा टिकट? टिकट! मुझे भी चाहिए। मैंने कभी और कहीं का टिकिट नहीं लिया। सिनेमा बिना टिकट देखा, रेलगाड़ी में बिना टिकिट यात्रा की, किसी ने मुझे टिकिट नहीं पूछा। अब यहाँ टिकिट माँगते हो? मुझे जानते नहीं मैं भगत राधावल्लभ हूँ।

चौकीदार ने कहा होंगे। पर यहाँ बिना टिकिट भीतर नहीं जा सकते।

भगतजी उसे ढकेल कर आगे बढ़ने लगे। परन्तु चौकीदार ने उन्हें उठाकर भगवान के दरबार में जा खड़ा किया।

भगतजी ने हाथ जोड़कर कहा, अहा! मैंने पहचान लिया, साक्षात भगवान बिराजमान हैं। मेरी जन्म-जन्मान्तर की मनोकामना आज पूरी हुई और नाच-नाचकर कीर्तन करने लगे। [परन्तु मन ही मन सोचने लगे कि संसार में भगवान की जितनी भी मूर्तियां और चित्र प्रचिलित हैं, यह सूरत तो किसी से नहीं मिलती। बड़ी विचित्र बात है, क्या मुझे धोका तो नहीं हो रहा।]

भगवान ने कहा, व्यर्थ शोर मत करो,' नाम, पता बताओ ?

भगतजी ने नाम बताया।

भगवान बोले, अच्छा! जीवन भर पाप किये, यहाँ आकर मुझे भी धोका देना चाहते हो ? तुम्हारा मामला बड़ा गम्भीर है।

भगतजी बोले – भगवान्! मेरा मामला तो बिलकुल साफ है। मैं पूरा धर्मात्मा हूँ। नित्य भजन कीतन करता हूँ। असंख्य बार अखण्ड कीर्तन किया है और हजारों से कराया है। जो नास्तिक थे और कीर्तन करना नहीं चाहते थे उनको लाउडस्पीकर लगाकर रातों रात जगाकर आपका नाम सुनाया है। मैंने नित्य मन्दिर में जाकर आपके दर्शन किये, हजारों बार गंगा स्नान किया, चारों धाम किये हैं। रामायण भागवत की कथा सुनी है। रामलोला और कृष्ण-लोला देखी और कराई हैं। फिर भी भगवान्! आप मेरा मामला गम्भीर बताते हैं। अजामिल अपने पुत्र का नारायण, नाम एक बार लेने पर तर गया वाल्मीकि उल्टा नाम जपने से ऋषि बन गये, तब भगवान् मैंने तो असंख्य बार आपके अनेक नामों का भजन कीर्तन किया है। फिर आप मेरे सम्बन्ध में ऐसी आशंका करते हैं, बड़ा अंधेर है।

भगवान बोले, व्यर्थ माथाखपी मत करो। यहाँ तो भले-बुरे

कर्म देखे जाते हैं। जप-कीर्तन, पूजा-पाठ के बाह्य ढोंग और बगला भक्ति को यहाँ कोई नहीं पूछता। यहाँ पौराणिक गपोड़े नहीं चलते।

भगतजी यह सुन कर, कुछ चकराये—बोले भगवान् यह आप क्या कह रहे हैं? मैंने तो सदा पुण्यकर्म ही किये हैं, कभी कोई पाप नहीं किया। इतना कहकर भगतजी—'हरे रामा-हरे कृष्णा, कृष्णा-कृष्णा हरे हरे' का कीर्तन करने लगे और नाचने लगे। चपरासी ने कहा—शोर मत करो-यह भगवान का दरबार है।

भगवान् बोले—मेरा समय नष्ट न करो। तुम चाहते क्या हो?

भगतजी ने गिड़गिड़ा कर निवेदन किया, भगवन्! आपसे क्या छिपा है? आप घट-घट वासी हैं, अन्तर्यामी हैं आप सब कुछ जानते हैं—

राम झरोखे बैठ के सबका मुजरा लेय।
जैसी जाकी चाकरी तैसो ताको देय॥

प्रभु मुझे स्वर्ग में कोई अच्छा सा स्थान देने की कृपा करें—यही विनती है।

भगवान कहा—तुमने ऐसा कौन सा पुण्य कार्य किया है ज तुमको स्वर्ग मिल जाय, फिर स्वर्ग-नरक नाम के कोई स्थान नहीं हैं—जैसा तुम समझ रहे हो। ये तो भली-बुरी योनियों के ही दूसरे नाम हैं, जो कर्मानुसार संसार के सभी जीवों को दी जाती हैं।

भगतजी यह सुनकर भौचक्के रह गये। उन्होंने गोलोकादि स्वर्ग के जो चित्र पुराण कथाओं के आधार पर अपने मन में खींच रखे थे उन पर पानी फिर गया। मुँह लटका कर गिड़गिड़ाते हुए बोले, महाराज! बड़ा धोखा! अब जो भी हो कृपा करके कोई उत्तम देवयोनि ही प्रदान कर दीजिये। परन्तु भगतजी को भगवान के यह वचन कि 'तुमने ऐसा क्या पुण्य किया है जिससे तुमको स्वर्ग मिले, 'बहुत खटके—जिस भगवान के लिये दिन रात एक कर दिये वही पूछता है कि तुमने ऐसे कौन से कर्म किये हैं? उनको क्रोध आ गया परन्तु यह सोच कर कि भगवान पर क्रोध करने

से क्या लाभ ? वह उसे विष के घुंट की तरह पी गये और सिर झुका कर दीन भाव से बोले—भगवान् मैंने आपका भजन कीर्तन किया—क्या यह सब व्यर्थ गया--यह क्या कम पुण्य है ?

भगवान् ! बोले—भजन तो एकान्त में होता है। मुझे जब घट-घट व्यापी मानते हो तब यह चीख-चीखकर कोलाहल क्यों करते थे ? लाउडस्पीकर क्यों लगाते थे ? क्या मैं बहरा हूँ ?

भगतजी बोले - महाराज उधर सभी लाउडस्पीकर लगाते हैं—सिनेमावाले मिठाई वाले, और सिग्रेट बोड़ी वाले—अगर मैंने लगवा दिया तो क्या पाप किया ?

भगवान ने कहा—वे तो अपनी अपनी चीजों का विज्ञापन करते हैं—मैं भी क्या कोई बिकाऊ माल हूँ ? फिर मूर्ख ! जिंन राम कृष्ण आदि का नाम लेकर तू मेरा कीर्तन करता था वे तो मनुष्य थे—मेरे नाम तो नहीं हैं ?

भगतजी यह सुनकर सन्न रह गये। यदि संसार में कोई ऐसी बात कहता तो यह उस पर अपनी भक्त मण्डली सहित पिल पड़ते, परन्तु क्या करते, स्वयं भगवान ऐसा कह रहे हैं। वह वहाँ अकेले हैं और बेबस हैं चुप हो गये।

भगवान् उनकी मुखाकृति देखकर उनके मनोभाव ताड़ गये। बोले, तुमने अपने अडौसी-पड़ौसी और मुहल्ले वालों को इस कीर्तन से नाक में दम कर दिया। तुम्हारे कोलाहल से न वह कुछ काम कर पाते थे, न चैन से बैठ सकते थे और न सो सकते थे। उनमें तो बहुत से मुझसे भी घृणा करने लगे सोचते हैं। कि अगर यह भगवान न होता तो यह भगत और उस जैसे इसके साथी, जिनमें शराबी, भंगड़ी, माँसाहारी, जुआरी, दुराचारी सब ही हैं-इतना हल्ला-गुल्ला न मचाते सोचो तुमने इस प्रकार मुझे कितना बदनाम किया !

भगतजी से अब न रहा गया—बोले, भगवान् ! आपका नाम लोगों के कानों में जाता था, यह तो उनके लिये अच्छा ही था। उनको अनायास ही पुण्य मिल जाता था। भगवान को भगत की

मूर्खता पर तरस आया। बोला - पता नहीं यह परम्परा कैसे चली कि भक्त का मूर्ख होना भी जरूरी है ! क्या कान में मेरा नाम पड़ने से वह मेरा भक्त बन जायेगा ? यह नाम तो पशु-पक्षियों के कानों में भी पड़ते होंगे, तब क्या वे भी पुण्य के भागी होंगे ? यदि मुझे प्राप्त करने का कीर्तन सस्ता नुस्खा है, तब शुभाशुभ कर्म ही व्यर्थ हो जायेंगे। संसार में यह मिथ्या भावना, धूर्तों ने पुण्य-पाप की व्यवस्था को मिटाकर अनाचार फैलाने के लिए निकाली है। क्या तुमने अपने फूटे कानों से यह नहीं सुना कि 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करे सो तस फल चाखा।" क्या तुम समझते हो कि मैं मूर्ख हूँ, चापलूसी पसन्द हूँ, कि किसी बेवक़ूफ़ अफ़सर की तरह तुम्हारी इन चिकनी-चुपड़ी बातों से खुश हो जाऊँगा ? मैं इन बातों से खुश नहीं होता—मैं तो कर्म देखता हूँ।

भगत जी ने कहा--भगवन् ! मुझसे जाने अनजाने यदि कोई अशुभ कर्म बन पड़े तो क्या वे आपके नाम के कीर्तन से दग्ध नहीं हो गये ? क्या आपके भागवतादि में दिये उपदेश झूठे हैं ?

भगवान् बोले---अरे मूर्ख ! यदि तू बुद्धि से काम लेता जिसे मैंने तुझे प्रदान किया है, तो तेरे ज्ञान चक्षु खुल जाते। यदि मेरे नाम लेने से, जैसा कि पुराणों में धूर्तों ने लिख मारा है, पाप दूर हो जाते तो सारे संसार में सभी आज सुखी दीख पड़ते दुःखी कोई न रहता। परन्तु जिनके ज्ञान-चक्षु ही फूट जाँय उनका क्या इलाज ! तुम जैसों ने मेरे नाम पर व्यभिचार और अनाचार का प्रचार किया है, हत्याएँ की हैं। मेरे पास अब व्यर्थ का समय नहीं जो तुम्हें बताऊँ कि तुम लोगों ने मेरे नाम पर क्या-क्या कुकर्म नहीं किये, और नहीं कर रहे ?

यह सुनकर भगतजी के धैर्य का बाँध फूट पड़ा और भगवान की नियत पर शंका करने लगे। सोचने लगे यह भगवान् होकर भी झूठ बोलता है, क्रोध में आकर बोले--आपको भगवान् होकर झूठ बोलना शोभा नहीं देता। मैंने क्या व्यभिचार किया है और किस की हत्या की।

भगवान् ने कहा—मैं फिर कहता हूँ कि तुमने मेरे नाम की आड़ में व्यभिचार और हत्या की है। अभी प्रमाण देता हूँ।

भगवान् ने एक अधेड़ अवस्था की स्त्री को बुलाया, भगत से पूछा—इसे पहचानते हो ?

इसे देखकर भगत जी को पसीना आ गया, घबराते हुए नीची दृष्टि करके बोले—हाँ, महाराज ! पहचानता हूँ।

भगवान् बोले—मोहिनी ! अब बताओ, तुम्हारी मृत्यु कैसे हुई ?

मोहिनी बोली—महाराज ! मैं २० वर्ष की अवस्था में विधवा हो गई थी। ससुराल वालों ने मुझे घर से बाहर निकाल दिया। माता-पिता पहले ही परलोक सिधार चुके थे, भाई के पास रहने लगी, सोचा कि अब शेष जीवन भगवद्-भक्ति में ही व्यतीत करूँ। मैं नित्य भगत जी की कीर्तन मण्डली में अन्य स्त्रियों के साथ जाने लगी। भगत जी मेरे यहाँ आने जाने लगे। उपदेश के साथ यह मुझ से प्रेमालाप भी करने लगे। मैंने कहा—भगत जी ! आप मेरे पिता के तुल्य हैं-इस कुकर्म से बचो, परन्तु इन्होंने भागवत से भगवान् कृष्ण की गोपियों ? राधा और कुब्जा के रास-विलास की कथा सुनाकर कहा कि इसमें कोई दोष नहीं है। स्वयं भगवान् ने यह लीलाएँ की हैं। इन्होंने मेरे साथ अनेक बार व्यभिचार किया, कई बार गर्भपात भी कराया। अन्त में एक बार इसी गर्भपात में मेरी मृत्यु हो गई।

भगवान् बोले —कहो, भगत जी ! यह क्या कहती है ?

भगत जी पसीना पोंछते हुए बोले, भगवन् ! यह ठीक कहती है। परन्तु जब आपने कृष्णवतार लेकर यह सब कुछ किया-गोपियों के साथ रास-विहार, कुब्जा के साथ संभोग और राधा के साथ छुप-छुप कर प्रेम लीला और अन्त में अपनी माता यशोदा के भाई 'रायाण' जो आपका मामा लगता था, उसकी इस पत्नी राधा के साथ छुपकर विवाह तक कर लिया—तब मैंने ही क्या पाप किया ?

यह सुनकर भगवान् का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा, आँखें लाल हो गईं। बोले, अरे धूर्त, ! तू अब मुझ पर भी दुलत्ती फेंकने लगा ? अधम ! मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह पुराण कथाएँ तुझ जैसे धूर्तों की

रचनाएँ है। मैंने कभी अवतार नहीं लिया, न मुझे उसकी आवश्यकता थी–यह सब मिथ्या और कपोल कल्पित है।

भगतजी गिड़गिड़ा कर बोले, महाराज ! मैंने हत्या कौनसी की ?

भगवान् ने कहा देख, इस विधवा की भ्रूण हत्याएँ और उसी कारण इसकी भी मृत्यु ! क्या इन हत्याओं का तू दोषी नहीं है ? अच्छा और ले। भगवान ने एक पुरुष को बुलाया। भगत से पूछा–इसे पहचानता है ? यह कौन है ?

हाँ ! महाराज, यह मेरे पड़ौस का देवदत्त मास्टर है पिछले साल यह बीमारी से मरा था।

भगवान् झिल्ला कर बोले—बीमारी से नहीं तुम्हारे हुल्लड़ से मरा है—जिसे तुम भजन कीर्तन कहते हो। तुम्हारे लाउडस्पीकर ने इनकी जान ली है। देवदत्त बताओ तुम्हारी मृत्यु कैसे हुई ?

देवदत्त ने कहा—प्रभो, मैं बीमार था। डाक्टरों ने कहा तुम्हें पूरी तरह नींद और आराम मिलना चाहिए। पर भगतजी के लाउडस्पीकर पर अखण्ड कीर्तन के मारे मुझे तीन दिन तक नींद नहीं आई। मेरे भाई ने भगतजी से बहुत अनुनय-विनय की कि यह लाउडस्पीकर बन्द कर दो, परन्तु यह न माने और लड़ने को आमादा हो गये। कहने लगे—तेरे लिये हम अपना पूजा पाठ बन्द कर दें। अखण्ड कीर्तन को खण्डित कर दें। अन्त में चौथे दिन मेरी मृत्यु हो गई।

भगतजी यह सुनकर घबड़ा गये।

तभी एक बीस इक्कीस साल का लड़का बुलाया गया। भगवान ने पूछा—विद्याधर ! तेरी मृत्यु कैसे हुई ?

महाराज, मैंने आत्म हत्या करली थी।

आत्म-हत्या क्यों की ? भगवान् ने पूछा।

'भगवान मैं परीक्षा में फेल हो गया था।

परीक्षा में अनुत्तीर्ण क्यों हुए ?

'भगतजी के लाउडस्पीकर के शोर से मैं पढ़ नहीं सका-मेरा घर मन्दिर से ही मिला हुआ था।

भगतजी को याद आया कि इस लड़के ने उससे प्रार्थना की थी कि कम से कम परीक्षा के दिनों में लाउडस्पीकर न लगाइये।

भगवान ने उच्च स्वर से कहा—तुम्हारे इन पापों को देखते

हुए मैं तुम्हें दस जन्म तक कुत्ते की योनि में भेजता हूं।

यह सुनकर भगतजी बहुत रोये, चिल्लाये। कहने लगे महाराज! मुझसे भूल हुई, मुझे धोखा हुआ। मैंने बुद्धि-विवेक से काम न लिया! मिथ्या भक्ति के कुमार्ग में पकड़कर पथ-भ्रष्ट हो गया। पुराणों के चक्कर में पड़ गया, आगे ऐसी भूल न होगी। भगवन्! इस बार तो क्षमा करें!

भगवान् ने उत्तर दिया—मनुष्य को बुद्धि इसलिये दी गई है कि वह विवेक से काम ले। धर्म-अधर्म, पाप-पुन्य को समझे। धर्म क्या है और अधर्म क्या है? इसका उपदेश मैंने तुम्हें सृष्टि के आदि में वेदों द्वारा दिया है। परन्तु तुम लोगों ने इस बुद्धि का साँसारिक उचित-अनुचित कार्यों में खूब उपयोग किया। बाल की खाल निकाली परन्तु धर्म-कर्म में उसे खूंटी पर टांग दिया। संसार के ढोंगी पाधा-पुरोहितों और नाम धारी संन्यासियों ने जैसा बहका दिया वैसे ही करते रहे। पुराणों की झूंठी कथाओं में विश्वास करके अपने लोक परलोक दोनों बिगाड़ बैठे।

भगतजी ने सिर धुनते हुए झिल्ला कर कहा—महाराज! मैं इन बगला भगत और रंगे स्यारों के चक्कर में आ गया। अपना जन्म बिगाड़ बैठा। आगे ऐसी भूल कभो न होगी। इस बार तो क्षमा कर दीजिए।

भगवान् ने उत्तर दिया—नहीं! पाप क्षमा नहीं किये जा सकते इनका फल भुगतना पड़ेगा। यमदूतों को आज्ञा दी इसे ले जाकर कुत्ते की योनि में डाल दो।

भगत जी रोते चिल्लाते ही रहे और यमदूत उनको पकड़कर घसीट ले गये। इस घटना को तीस वर्ष के लगभग हो चुके हैं। भगतजी अब चौथी बार कुत्ते की योनि भोग रहे हैं सुना है इनकी भक्त मण्डली भी इसी योनि में डाल दी है। यह सब लोग उसी मुहल्ले में मन्दिर के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। अपने पुराने संस्कारों के अनुसार रात भर भोंकते-चिंल्लाते हैं। और अपने पिछले कर्मों को याद करके रोते हैं। सभो घरों से धुतकारे जाते हैं और डण्डे खाते हैं। अब सुना है कि कुत्तों की संख्या बढ़ जाने के कारण वहाँ नगर पालिका उनके मारने का अभियान चलाने वाली है।

आया है इस जगत में तो शुभ कर्म कमाले ।

गुण ईश के गाले ॥

दर-दर भटक रहा है क्यों टुक ज्ञान चक्षु खोल ।
घट-घट निवासी को तू अपने घट में ही पाले ॥
मन शुद्ध बनाले ॥

क्या रङ्ग रहा है बावले कपड़ों को रङ्ग में ।
मन पहले अपना प्रेम के रङ्ग में तू रङ्गाले ॥
हठ, दम्भ मिटाले ॥

वह आँख ही क्या देख जो दुखियों को तर न हों ॥
वह हाथ ही क्या जो नहीं गिरतों को उठाले ॥
सीने से लगाले ॥

भर लेते अपना पेट श्वान भी हैं जगत् में ।
अच्छा तो यही खाले और को भी खिलाले ॥
रसधार पिलाले ॥

कर्त्तव्य मार्ग से कभी हटना नहीं 'प्रकाश' ।
सहने पड़ें कितने ही चाहे विघ्न कसाले ॥
हों जान के लाले ॥

करनी करले जग में नीकी

राग, द्वेष, ईर्षा तज पीले,
घूँट मधुर प्रिय प्रेम अमी की । करनी कर०
पाप-मूल आलस्य अधम है,
उन्नति का साधन संयम है ।
बना शुद्ध जीवन तू अपना,
नाहक निन्दा कर न किसी की । करनी कर०
वैदिक धर्म परम सुखदाई,
बन 'प्रकाश' इसका अनुयायी ।
पढ़ सत्यार्थ-ग्रन्थ ऋषिवर का
शंङ्का सब मिट जाये जी की । करनी कर०

[श्री पं० प्रकाश जी 'प्रकाश']

ओ३म्

वैदिक शिव

लेखक :—

दर्शनवाचस्पति श्री पं० विश्वबन्धु शास्त्री, साहित्यरत्न
नारायण भवन आर्य नगर, ज्वालापुर (हरिद्वार)

सम्पादक व प्रकाशक—

सत्यमेव जयते-प्रकाशन

ब्र० नन्दकिशोर विद्याभास्कर विद्यावाचस्पति एम. ए.
(हरिद्वार)

(परिद्रष्टा) आर्ष गुरुकुल होशंगाबाद म. प्र.

सहयोग—

पुत्र मणीलाल श्री शिवनारायण भाई वीर जी भाई वेलाणी
(लुड़वा-कच्छ)
फर्म- श्री स्वस्तिक टीम्बर सप्लायर्स
हरदा (म.प्र.) ४६१-३३१
एवम्
श्री गंगदास भाई हीर जी भाई वेलाणी
(निरोणा-कच्छ)
फर्म- श्री टीक टीम्बर इन्डस्ट्रीस
हरदा (म.प्र.) द्वारा प्रचारित

चतुर्थ संस्करण : १०००
मूल्य– पढ़ना-पढ़ाना (सहयोग)

मुद्रक- प्रगति प्रेस, जुमेराती होशंगाबाद

ओ३म्

"वैदिक शिव"

सच्चा शिव

भारतवर्ष की महा महिमामयी भूमि अनेकों सहस्राब्दियों से पारस्पिरिक कलह, द्वेष, ईर्ष्या के कारण गौरव-शून्य हो चुकी हैं।

भारत का गौरव सूर्य अस्तंगत है, भारत की समुन्नत संस्कृति का नाम शेष है। सब देशों का गुरु भारत अपने को शिष्य कोटि में रख चुका है।

पुराणों में देवासुर संग्राम और वैष्णवों का द्वन्द्व है। सत्ययुग की हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद की कथा, त्रेता की रावण और राम की कथा शैव और वैष्णवों का समर है।

आओ मिलकर विचारें कि 'सच्चा शिव' क्या है ?

पौराणिक कल्पना के अनुसार शिव कैलाश पर्वत पर रहता है, हिमालय की पुत्री पार्वती से पाणिग्रहण करता है, दक्ष हाथ में त्रिशूल धारण करता है और वाम में डमरू, सिर पर गंगा है मस्तक पर अर्धचन्द्र है, तीन नेत्र हैं, सवारी नादिया अर्थात् वृषभ है, गले में मुण्डमाल है, बाघाम्बर धारण किया हुआ है, सर्पो का यत्रतत्र बन्धन है। देवों के कष्ट दूर करने के लिये विषपान कर नीलकण्ठ नाम पाया। इत्यादि किम्वदन्तियां शिव विषयक प्रसिद्धि पा चुकी हैं।

आज हम आपको बतलायेंगे कि यह शिव कौन है ?

पाठक वृन्द !

हमारी संस्कृति अध्यात्म प्रधान है। जहां संसार की विभिन्न संस्कृतियां भोग प्रधान हैं. वहां भारतीय संस्कृति त्याग प्रधान है, आध्यात्मिकता में योग का विशेष महत्व है। योगी ही सच्चा शिव है।

योगी और कैलाश

योगी भी कैलाश पर निवास करता हैं पर्वत दृढ़ता का प्रतीक है। पर्वत व्रत का प्रतीक है। कैलाश परोक्ष रूप है इसका प्रत्यक्ष रूप कीलाश है। संस्कृत साहित्य में कीलाश = अमृत और अश = भोजन को कहते हैं, अर्थात् योगी अमृत भोजी होते हैं। इस भोजन में वे चातक व्रती हैं। वे अमृत भोजन पर पर्वत के समान दृढ़ हैं। वे मृत्यु के रहस्य को उद्घाटित करना चाहते हैं।

योगी और तृतीय नेत्र

उस दृढ़ता से योगी आगे बढ़ता है। उसकी साधना में अनेकों बाधाएं उपस्थित होती हैं, अनेकों सिद्धियां आगे आकर खड़ी हो जाती हैं। कृष्ण के शब्दों में :—

इन्द्रियेभ्य: परा ह्यर्था: अर्थेभ्यश्च परं मन: ।
मनसस्तु परा बुद्धि:, यो बुद्धे: परतस्तुस: ॥
एवं बुद्धे: परं बुद्ध्वा, सस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहि शत्रुं महाबाहो, कामरूपं दुरासदम् ॥

अर्थात् इन्द्रियों से सूक्ष्म इन्द्रियों के विषय हैं, उनसे भी सूक्ष्म मन है और मन से भी सूक्ष्म बुद्धि है तथा बुद्धि से भी सूक्ष्म काम है। इसलिये हे अर्जुन ! कामरूपी महान् शत्रु से मोर्चा ले। योगी अपने मस्तिष्क के विशुद्ध विचारों द्वारा कामरूपी महाशत्रु को भस्म कर देता है। योगी कामासक्त नहीं होता।

योगी और त्रिशूल

संसार में तीन प्रकार के दु:ख हैं जिनके अन्तर्गत समस्त दु:खों का समावेश हो जाता है आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक। इन दु:खों से छुटकारा पाने में योगी भरसक प्रयत्नशील और अत्यन्त पुरुषार्थी है।

"अथ त्रिविधदु:खात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थ:"

(सांख्य दर्शन १ १)

तीनों प्रकार के दु:खों को दूर करना ही अत्यन्त पुरुषार्थ है। वे तीनों दु:ख योगी के शरीर, मन और आत्मा को छोड़ भागाते हैं, योगी उनको अपनी मुट्ठी में कर लेता है। सच्चा योगी संसार को अभय कर देता है।

योगी और नादिया (वृषभ)

'नादिया' नाद का अपभ्रंश रूप है। नाद ध्वनि को कहते हैं। योगी नाद पर आरूढ़ रहता है। वह 'ओ३म्' नाद का प्रेमी होता है। योग दर्शनकार महायोगी महर्षि पतञ्जलि के शब्दों में :–

'तस्य वाचक: प्रणव:, 'तज्जपस्तदर्थभावनम्'

अर्थात् योगी प्रणव का जाप करता है। यही उसके पास वृषभ हैं 'वृषभो वर्षणात्' जो सुखों की वर्षा करता है।

इस विषय में दूसरा बिचार यह है कि योगी अपनी श्वास निश्वासें अजपा जाप के रूप में प्रयुक्त करता है। आत्मा को वेदों में हंस कहा है, जैसे—

"हंस: शुचिषद्......अर्थात् आत्मा शुद्ध होने के कारण हंस है । हंस: हंस: हंस: इस प्रकार जाप की सन्धि हंसो हंसो

हंसो है। इसका उल्टा रूप (सोहं सोहं सोहं) है । यही तो 'उल्टा नाम जपा जग जाना, बालमीकि भये ब्रह्म समाना' है। यह आत्मा (शिव) श्वास प्रश्वासप्रणाली में (सोहं सोहं सोहं) का जाप करता है और इसी नाद पर स्थिरता को धारण करता है । यही बात ईशोपनिषद् में सुन्दर ढग से वर्णित की है।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह । तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि ।

यहः असौ, असौ पुरुषः सः अहम् अस्मि य. = जो,असो = प्राण में, असौ=यह, पुरुषः = पुरुष है । स. वह, अहम् = मैं अस्मि = हूं। यह 'सोहम्' नाद आत्मा का अजपा जाप है जो प्रतिक्षण निरन्तर चलता रहता है।

योगी और मुण्डमाल

योगी अपने अतीत जन्मों को जान लेता है कि मैंने कौनसे शिर धारण किये। बिना शिर का शरीर कभी पहचाना नहीं जा सकता इसलिये शरीरमाल न कह कर मुण्डमाल कहा है, वह अनेकों जन्मों की शरीर धारण क्रिया को पहचान लेता है यही उसका मुण्डमाल धारण करना है। योगीश्वर कृष्ण के शब्दों में :—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यह वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥

हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत जन्म व्यतीत हो चुके पर मैं तो उनको जानता हूं, तू नहीं जानता।

योगी और भस्म

प्रत्येक योगी शरीर और आत्मा के सम्बन्ध को भले प्रकार पहचान लेता है। वह जान लेता है 'अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता शरीरिण:"

इस शरीरी के देह नाशवान् हैं यह इस शरीर का राग छोड़ देता है, वह योगी अध्यात्मवाद की शरण लेता है, योगी 'भस्मान्तशरीरम्' का महत्व पहचान लेता है और इस शरीर को आत्मा के ऊपर लिपटी हुई भस्म ही समझता है। वह भस्म यज्ञ को छोड़कर अध्यात्म यज्ञ प्रारम्भ कर देता है।

योगी और गंगा

योगी के मस्तिष्क में ज्ञान गङ्गा हिलोरें मारती है वह परमगुरु परमात्मा से सम्बन्ध करता है और उनके ज्ञान को धारण करता है तथा सम्पूर्ण जल–थल को आप्लावित और आप्यापित करता हुआ उसका ज्ञान अन्त में अनन्त सागर में लीन हो जाता है। योगी समझता है महान से महान और लघु से लघु में, विशाल-से विशाल और तुच्छ से तुच्छ में परमात्मा का ही निवास है। इसलिये उसका ज्ञान सर्वत्र प्रसृत होता है। वह भेदभाव को भूल कर सबका भला करता है।

योगी और द्वितीया का चन्द्र

चन्द्र आह्लाद का प्रतीक है। चन्द्रमा को देखकर मन में स्वभाविक प्रसाद उत्पन्न होता है। 'चन्द्रमा मनसो जात:' मन की चंचलता चन्द्रमा को देखकर दूर हो जाती है ऐसी स्थिति में योगी को आह्लाद प्राप्त होता है। चन्द्रमा का दूसरा नाम सोम है। सोम के कारण योगी में सौम्यता का गुण प्रादुर्भूत होता है। योगी सोमरस का पान करता है। द्वितीया का चन्द्र जितना प्यारा

होता है उतना पूर्णिमा का भी नहीं, क्योंकि पूर्णिमा के पश्चात् निराशा का सकलन होता है और द्वितीया के पश्चात् आशा उत्तरोत्तर बलवती होती है।

योगी और सर्प

योगी के काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह ईर्ष्या, द्वेष आदि विषधर अन्तर को छोड़कर बाहिर आ बैठते हैं, उसका अन्तः करण विशुद्ध हो जाता है। उसको ये दुर्भाव सता नहीं पाते। वह समस्त संसार के विषधरों को अपने यहां आमन्त्रित कर लेता है। संसार को इनसे मोक्ष दिला देता है। ये फिर उसके आभूषणों का काम देने लगते हैं।

योगी और नीलकंठ

देव और असुर शक्ति ने मिलकर समुद्र मन्थन किया और उसमें चौदह रत्न निकले जिनमें एक विष भी था अब उसको कौन पान करे? यह समस्या थी देवताओं के सामने। समस्या को हल किया शिव ने पान कर लिया गरल गल में, और नीलकण्ठ की उपाधि पाई देवों से।

योगी विद्वान् लोगों पर पड़ने वाली आपत्ति को दूर करने के लिये बड़ी से बड़ी कठिनाइयों का सामना करता है उनको झेलता है विष दिये जाते हैं पर उनको अमृत समझकर पान करता है और समाज को तनिक भी क्षति ग्रस्त नहीं होने देता।

योगी और बाघाम्बर

योगी हिंस्र जन्तुओं से परिपूर्ण बन में बाघ आदि हिंसक खालों को ही अपना परिधान और आसन बनाता है। इसके साथ ही साथ अपनी इन्द्रियों को 'सिहवत्' दमन करके रखता है। तथा उनके समस्त अघ भीतर से निकल कर बहार भागते फिरते हैं। वह उन्ही से अपने आपको ढक लेता है और आत्माराम रूप में मस्त विचारता है।

योगी और हिमालय की पुत्री पार्वती

'हिम आच्छादने' को कहते हैं। आच्छादन शब्द अन्धकार का द्योतक है ! अन्धकार जगत् का प्रतीक है और प्रकाश परमात्मा का। मध्यस्थित यह जीवात्मा अन्धकार के द्वारा प्रकाश को प्राप्त होता है इसी से पार्वती प्रकाशवती बुद्धि 'मेना' 'मेरा नहीं' से उत्पन्न होती है 'इदं न मम' भी इसी का विशदार्थ है।

'इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि' में भी सत्य की प्राप्ति अनृत से है यही बात वर्णित की है, कनोपनिषद् में :—

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद्यक्षमिति में वर्णन है।

अर्थात् उस आकाश में एक स्त्री दिखलाई पड़ी जिसका नाम 'उमा' था जो हैमवती थी—मन को 'उमा' का दर्शन उसी प्रकाशवती प्रवृत्ति का परिचायक है।

उ = ब्रह्म मीवते यया उमा = ब्रह्म विद्या को कहते हैं।

वह योगी ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर लेता है फिर उसका समस्त कार्य—महायोगी कृष्ण के शब्दों में :—

'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना' हो जाता है।

योगी और डमरू

योगी फिर डमरू बजाता है अपनी भावना की डिंडिम घोष करता है 'डमरू' शब्द भी परोक्ष रूप में है प्रत्यक्ष रूप में तो 'दमरू' है। 'परोक्ष प्रिया हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः' विद्वान् परोक्ष से ही प्रेम करते हैं प्रत्यक्ष से नहीं।

'दमरू: शब्द का विश्लेषण करने पर दम और रु: दो शब्द उपलब्ध होते हैं।

'दम: दमन को, और रु: शब्द को कहते हैं अर्थात् उसके प्रत्येक कार्य से 'दमनात्मक ध्वनि' व्यक्त होती है। वह इन्द्रिय दमन का पाठ पढ़ाता है। वह भोग के रोग से छूड़ा कर त्रिशूल के सङ्कट से मानव मात्र को मुक्त करता है।

भारत वर्ष और शिव (योगी)

भारतवर्ष योगियों के लिये प्रसिद्ध है भारतीयों का तीन चौथाई समय योग साधन में ही व्यतीत होता था। रघुवंशियों में तो अन्त में योग द्वारा ही प्राण विसर्जन की प्रथा थी। कालीदास के शब्दों में—

योगेनान्ते तनुत्यजाम्, रघूणामन्वयं वक्ष्ये।

अथवा

अथ स विषय व्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे नृपति ककुदं दत्वा यूने सितातय वारणम। मुनिवन तरुच्छायां देव्या तया सहशिश्रिये, गलित वयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्॥

मुनिव्रत लेना इक्ष्याकु वंशियों का कुलव्रत था।

वेद में भी

उपह्वारे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम। धिया विप्रो अजायत। पर्वतों की गुफाओं में, नदियों के सङ्गम में, विप्र उत्पत्ति बुद्धि द्वारा होती है। अस्थियों के भीतर हृदयाकाश में, इडा पिङ्गला और सुषुम्ना के सङ्गम में बुद्धि से विप्रत्व उत्पन्न होता है। ब्राह्मी बुद्धि उपलब्ध होती है।

ये सब परम्पराएं योग साधन की परिचायिका हैं। यहां प्रत्येक व्यक्ति को शिव बनाया जाता था। वह देश-जाति एवं

प्राणिमात्र के लिये सच्चा शिव प्रमाणित होता था । प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य था कि वह शिव हो और अपनी सन्तान को शिव बनावें ।

आज वह कला हमारे हाथ से निकल गई आज हम हस्त कला कुशल रह गये पर मन से शिव निर्माण की भावना दूर न हुई और इसी आधार पर उस योगी निर्मात्री हिमालय की प्रत्येक प्रस्तर कृति को शिव मान बैठे । शिव का सच्चा स्वरूप भूल गये और एक दिन फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी की अर्द्धरात्रि में गुर्जर प्रदेशके टकारा ग्राम में शिवव्रत के दिन जिसमें शिवनिर्माण पर स्त्री पुरुष मिलकर विचार करते थे वहां केवल प्रस्तर प्रतिमा को ही शिव मानकर करशन जी (कृष्णजी) अपने बच्चे मूलशङ्कर के साथ बैठे निद्रा में निमग्न थे और बच्चा शङ्कर की मूर्ति के सामने जागरूक शिव की सत्यता मे व्यग्र था ।

गणेश वाहन के शिव सिर चढ़ते ही शिव की सत्यता समझने का सुअवसर हाथ आया जान पिता जी को जगाकर प्रश्न किये परन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर न पाकर वह सत्य का पुजारी सत्यान्वेषक सच्चे शिव की खोज में वनों, पर्वतों, गिरिगुहाओं में मारा २ फिरा और अन्ततोगत्वा वह स्वयमेव शिवनिर्माता कुशल कलाकार गुरु विरजानन्द के हाथों में पड़कर सच्चा शिव बन गया। वह यहीं नहीं रुका वह और आगे बढ़ा ।

कामदेव को तीसरे नेत्र से भस्म करने वाला त्रिनेत्र, आजन्म ब्रह्मचारी रहा और पार्वती (ब्रह्मविद्या) से पाणिग्रहण किया । ज्ञान गङ्गा को मनुष्य समाज के सिर से पैर तक ब्राह्मण से शूद्र तक बहाया । सोमरस का पान करने वाला, तीनों शूलों (त्रिशूल) को अपने हाथों में रखने वाला दूसरे हाथ में वेद लेकर

वेद का घोष घर-घर करने वाला 'ओं' के नाद पर सवार, संसार के कल्याण के लिये एक बार नहीं सत्रह बार विष पान करने वाला पूर्ण दयालु शिव से भी शिवतर पूर्ण योगी महर्षि दयानन्द परम-कारुणिक रूप में जनता के समक्ष आया।

शिव बनाने वाली पद्धति को पुनः उद्धृत किया।

मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद के रूप में। इसीलिये स्त्री शिक्षा पर बल दिया, गुरुकुल प्रणाली को प्रोत्साहन दिया, वेदों की शिक्षा पुनः प्रचलित की। निर्जीवों को जीवन दान दिया। वह था सच्चा शिव, जो शिव की खोज में निकला और स्वयं शिव बन गया। कबीर के शब्दों में :—

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ॥

यह है तन्मयता का सुन्दरतम उदाहरण।

शव और शिव

'शव' और 'शिव' में इकार का अन्तर है। इकार शक्ति का प्रतीकार है। शव मुर्दे को कहते हैं। मुर्दे में यदि जीवनी शक्ति हो तो शिव हो जाता है। महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिवतर बनकर शवों में शक्ति संचार कर दिया, उन्होंने सोई हुई जाति को जगाया।

मानवमात्र शिव और शिवतर बन सकते हैं,

शिवतम नहीं

शिवतम तो केवल परमात्मा ही है।

'यो वः शिवतमो रसः' आत्मायें शिव बन सकती हैं, शिवतर बन सकती हैं, शिवतम नहीं। अवतारी पुरुष शिवतर होते

हैं जो स्वयं पारंगत होते हैं और भवसागर से पार करते हैं। पार होने वाले शिव, पार करने वाले शिवतर और लक्ष्य शिव-तम है।

वेद भगवान ने भी प्रात: और सायं की सन्ध्या में अन्तिम मन्त्र को लक्ष्य रूप में प्रस्तुत किया है।

नम: शम्भवाय च मयो भवाय च,
नम: शङ्कराय च मयस्कराय च,
नम: शिवाय च शिवतराय च।

मन्त्र में वह समस्त पद्धति वर्णित कर दी है। जो श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संस्कार विधि एवं सत्यार्थ प्रकाश में व्यक्त की है।

शैवों का मन्त्र १/६ है। जब कि वैदिकों के पास पूरा मन्त्र है।

पौराणिक वर्ग शिव पूजन में इस मन्त्र का विनियोग करते हैं।

वस्तुत: यह मन्त्र शिव निर्माण की कला वैदिकों को सिखाता रहा है।

प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक है कि वह सन्तान को 'शम्भवायच' शान्ति पूर्वक उत्पन्न करे। अशान्ति को दूर कर शान्ति क्रान्ति का सच्चा पाठ पढ़ाने वाली संस्कृति ही वास्तव में शान्ति द्वारा कामुकता को तिलांजलि देकर सुसन्तान उत्पन्न किया करती थी और वह सन्तान सुखोद्भव होती थी 'शान्ति और सुख' ये ही तो जीवन के लक्ष्य हैं। जो समस्त भूमण्डल में शान्त और सुखी मानव चाहता है, वह अपनी सन्तानों का निर्माण शान्ति और और सुख से करे।

आज प्रत्येक व्यक्ति का मानस अशान्त है और प्रत्येक व्यक्ति का मन तथा शरीर आधि व्याधियों से ग्रस्त है। ऐसी स्थिति में सन्तान शान्त स्वभाव और सुखी कैसे हो सकती है।

शम्भुत्व और मयोभव

सन्तान ही शान्ति करने वाली हो सकती है और सुखकारी शान्ति और सुख का पाठ माता तथा पिता के अंक से ही पढ़ा जाता है। माता शान्ति सिखाती है तथा पिता सुख।

जो सन्तान गर्भ से लेकर समावर्तन काल तक शान्ति और सुख का पाठ पढ़ाती है।

जो सन्तान अपनी शतायु के चतुर्थ भाग को शान्ति तथा सुख के सीखने में लगा देती है वही गृहस्थ में आकर शान्ति करने वाली और सुख देने वाली होती है और वही गृहस्थी अपने आयुष्य के तृतीय भाग में पुन: पहाड़ों वनों की शरण लेकर शिव बन जाता है। अशिव सोचने की प्रवृत्ति दग्धमूल हो जाती है :

आयु के अन्तिम भाग में सन्यासी बनकर शिवतर बन जाता है, और संसार में शिव निर्माता गृहस्थियों को शिव निर्माण का सच्चा पाठ पढ़ाता है और मृत्यूपरान्त शिवतम में लीन हो जाता है।

शम्भू: मयोभू: = ब्रह्मचारी। शंकर:–मयस्कर = गृहस्थी। शिव = वानप्रस्थ और शिवतर सन्यासी होता है।

महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती भी शिवतर) बनकर गृहस्थियों को सच्चा शिव निर्माण सिखाते रहे इसीलिए वे जिये और इसीलिए वे मरे और अन्त में वे शिवतम के सुमधुर क्रोड में समा गये।

मथुरा की पुण्य भूमि ने साढ़े पांच हजार वर्षों बाद दयानन्द को दयानन्द के रूप में समस्त संसार के लिये अनुपम भेंट दी।

शिव रात्रि अनेकों बार आई और गई परन्तु आर्यों को नव-जागृति का सन्देश देने वाली शिवरात्रि वस्तुतः बोध रात्रि के रूप में सच्ची शिवरात्रि है। जिसको प्रत्येक आर्य बड़ी श्रद्धा से मानता है और मनाता है और ऋषि तुल्य नई से नई शिक्षा ग्रहण करता है।

—●—

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१—श्री अमृत लाल शर्मा आर्ष गुरुकुल होशंगाबाद।

२—श्री छगन लाल, गंगाराम पटेल (जवाहर सोसाइटी) ३१ विशनगर (गुजरात)

३—श्री मणिलाल भाई (हरदा)

४—श्री रतन जी वेलानी
फर्म– टीक टीम्बर इन्डस्ट्रीस हरदा म.प्र.

-: लेखक के अन्य ग्रन्थ :-

१—दीपक

(एक साहित्यिक प्रहसन)

२—आर्य समाज के प्रथम नियम की व्याख्या

३—आर्य समाज के द्वितीय नियम की विशद व्याख्या

४—परमात्मा का स्वरूप

(दार्शनिक चिन्तन)

५—ईशोपनिषदि आत्मिक तत्वोदय:

(अध्यात्मिक विवेचन)

६—चार कवितायें

७—अथर्व वेद भाष्य (अप्रकाशित)

(कविता संग्रह)

८—आनन्द शायरी बहार (लेखक-नन्दकिशोर 'विनीत'

ओ३म्

ऋग्वेद यजुर्वेद

वसु ग्रन्थमाला – १५

बड़ा - कौन ?
परमात्मा या गुरु

लेखक :

स्नातक :

पं. जगदीशचन्द्र "वसु" भारद्वाज

विद्यावाचस्पति, सिद्धान्तालंकार, सिद्धान्त-भूषण

भू. पू. – प्रधान शिक्षक – सार्वदेशिक आर्यवीर दल दिल्ली।

महोपदेशक – आर्य प्रतिनिधी सभा, पंजाब, महाराष्ट्र, हरियाणा

प्रकाशक :

मान्य श्री कृष्णचन्द्र आर्य

अध्यक्ष -- आर्य समाज पिम्परीनगर, पूना १७ महाराष्ट्र

सुदर्शन स्टेशनरी मार्ट

१७१० सदाशिव पेठ, पूना ४११ ०३० -- महाराष्ट्र

सम्वत् – २०४१
फरवरी– १९८४

मूल्य एक प्रति–७० पैसे

सामवेद अथर्ववेद

आर्य समाज पिम्परी पूनाके संस्थापक
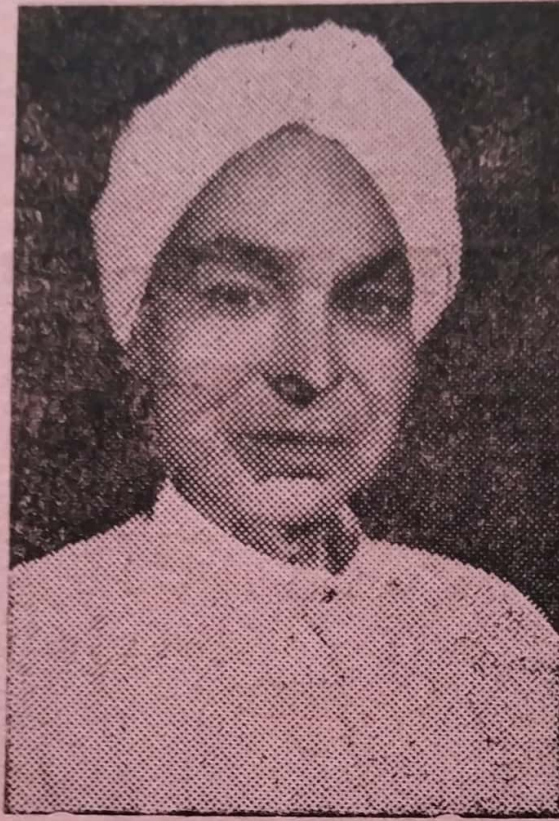
आर्योंपदेशक श्रीमान वेढारामजी आर्य

आर्य जगत्के प्रसिद्ध विद्वान् आर्योंपदेशक ८५ वर्षीय आर्य समाज पिम्परीनगर–पूना के संस्थापक पूज्य श्रीमान वेढारामजी आर्य, आर्य समाज के उन विद्वानों में से एक हैं। जिनका संपूर्ण जीवन वैदिक धर्म, आर्य समाज तथा महर्षि दयानन्द के विश्वकल्याणकारी सिद्धान्तों व मन्तव्यों के प्रचार व प्रसार में व्यतीत हुआ है। मै यह लघु पुस्तिका, बडा कौन ? परमात्मा या गुरु नामक उनको सादर ससम्मान श्रद्धापूर्वक समर्पित करता हूँ।

– ओ३म् –

पं. श्री. जगदीशचन्द्र वसु के लिखे पुस्तक के विषय में –

मेरे दो शब्द स्वयंको पुजानेवाले वाह वाह आज कल के गुरुओं की धज्जियां उड़ाई है--आज कल के गुरु स्वयं को पुजवाने लज्जाते नहीं--गुरु कहते किसे है--जो परमेश्वर (जो गुरुओं का गुरु है) उसकी उपासना का उपदेश करनेवाला ही तो गुरु होता है--फिर स्वयं पुजवाने का प्रश्न ही नहीं उठता -- यह तो धूर्तता ही होगी –

वेढ़राम भूतपूर्व प्रधान आर्य समाज पिम्परी कालौनी

प्रत्येक मानव को मार्गदर्शक की आवश्यकता पडती है। मार्ग-दर्शक ही गुरु कहलाने का अधिकारी होता है। सृष्टि के आदि मे भी मानवोको गुरु की आवश्यकता होती है उस का पद स्वयं परमपिता परमात्मा ने पालन किया। आदि ऋषियों के अन्तकरण मे प्रेरणा देकर चारों वेदों का ज्ञान दिया। इसीलिये महर्षि पतंजलिने "स पूर्वेषांमपि गुरुः कालेनान्वछेदात्" से परमात्मा को आदि गुरु कहा जो कि अमर गुरु है।

आजकल के गुरु ईश्वर के स्थान पर अपनी ही प्रतिकृति को पुजवाते है। यही अज्ञान है। अनेक गुरुओं ने शिष्यों को परस्पर विभेद कर रखा है। इस समस्या के समाधान हेतु मेरे सहपाठी विद्वान लेखक श्री. जगदीशचन्द्र "वसु" जी ने पुस्तक लिखकर भोले भाले मानवों को धूर्त लोगों की ठग्गी-ठोरी से बचाने का स्तुत्य श्रम किया है। अतः प्रत्येक ईश्वरभक्त को ये पुस्तक अध्ययन के योग्य हे।

वरुणवेश सरस्वती

"बडा कौन ? परमात्मा या गुरु"

लेखक : जगदीशचन्द्र " वसु " भारद्वाज

जब से आर्य समाज अपने मंच से असत्य, अविद्याका खण्डन करना छोड दिया – तब से अविद्या, अन्धकार, अन्धविश्वास, गुरुडम, पाखण्ड, ढोंग, जड-पूजा, ध्वज-पूजा, कब्र-पूजा, तथा प्रतिदिन नये-नये भगवान, गुरु पैदा हो गये। हम आये दिन मौखिक, समाचार पत्रोंमें तथा अन्ध विश्वासी लोगों से भगवानों तथा गुरुओं के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न चमत्कारादि गपोडे सुनते रहते हैं। जैसे–साईबाबा के सिर के बालों से बबूत (भस्मी) निकलना, और उस बभूत से समस्त रोगोंका ठीक हो जाना, तथा एच. एम. टी की घडियां निकालना, लोहेसे चांदीके जेवरादि बनाना, गुरु के दर्शन मात्रसे समस्त पापोंसे छुटकारा, गुरु के द्वारा मुर्दे जीवित करना, गुरु के विरुद्ध बोलकर सर्वनाश हो जाना, गुरुजी द्वारा समस्त बिमारियों का ठीक हो जाना, आदि आदि कल्पनायें लोग करते हैं। संसार का मानव आज सुख शान्ति एव आनन्द को खोकर नाना प्रकार के दुःखों में फंसा हुआ है। इसका मूल कारण है कि हमने एक सच्चिदानन्द स्वरुप परमपिता परमात्मा की उपासना छोडकर–जन्म मृत्यु को प्राप्त होनेवाले मनुष्योंकी उपासना करनी आरम्भ कर दी।

दुनिया की सबसे पुरानी पुस्तक है वेद। परमपिता परमेश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में मानवमात्र के कल्याण के लिये अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नाम के चार ऋषियों के अन्तःकरण में चारो वेदों का ज्ञान दिया जिसमें बताया गया है कि हमे केवल एक ही परमात्मा की उपासना करनी चाहिये। अन्य किसी की नही। सामवेद का मन्त्र है कि :–

ओ इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे। जनेभ्यः अस्माकं अस्तु केवलःअस्तु।

अर्थात् – हम तो " **विश्वत:-** " सब दृष्टि कोणोसे क्या अभ्युदय: व क्या नि:श्रेयस दोनो के विचारोंसे " **जनेभ्य परि** " मनुष्यो को छोडकर (परिवर्जन) " **व: इन्द्रम्** " तुम सबके परमैश्वर्यदाता उस प्रभु को ही " **हवामहे** " पुकारते है; और चाहते है कि " **अस्माकम्** " हमारा तो " **केवल अस्तु** " वह प्रभु ही एक मात्र हव्य व उपास्य हो हम उस प्रभु के साथ किसी अन्य की उपासना को न जोड दें। जैसा कि आज वर्तमान समय में अन्य मतवादी लोग अपने-अपने पैगम्बरों को अपनी उपासना के साथ जोड देते हैं जैसे –

पारसी मत में – जरदुश्त महोदय। यहुदी मत में–हजरत मूसा।
जैन मत में – महावीर स्वामी। बौद्ध मत में - महात्मा बुद्ध।
ईसाई मत में – ईसामसीह। इस्लाम मत में – मोहम्मद साहब।
कबीर मत में – सन्त कबीर। सिख मत में – गुरु नानक देव।
पौराणिक मत में–राम, कृष्ण, शंकर, हनुमान, देवी आदि-आदि।
ब्रह्मकुमारी मत में–दादा लेखराज। राधा स्वामी मत में– राधा स्वामी महाराज आदि-आदि

उपरोक्त मजहब वालों ने अपनी-अपनी उपासना पद्धति के साथ-साथ अपने-अपने पैगम्बरो को साथ मे जोडा हुआ है। परंतु वेद भगवान कहते हैं कि " **जनेभ्य: परि** " जन्म-मरण के बन्धन में आनेवाले मनुष्योंको छोडकर हम केवल एक प्रभुकी ही उपासना करते हैं अन्य की नहीं। चारो वेदों में इस प्रकार के अनेको मन्त्र है जिसमे केवल परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना, उपासना और आराधना का विस्तारसे वर्णन किया गया है।

आज इस आर्यावर्त देश में एक परमेश्वर की उपासना को त्याग कर गुरुओंकी स्तुति, प्रार्थना, और उपासना में स्त्री-पुरुष लगे हुये हैं। यही कारण है कि हम नाना प्रकार के दु:खों में, कष्टो, क्लेश, एवं विपदाओं में पडकर अपने जीवन की सुख

शान्ति और परमानन्द को खो बैठे है। आज गुरुडम पाखण्ड, अपने यौवनपर पहुचा हुआ है। जबतक इस गुरुडम पाखण्ड, अन्ध विश्वास, आदि अविद्या को दूर नहीं किया जायेगा तबतक देश में सुख-शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

यदा-कदा यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि—यदि किसीको एकसाथ परमात्मा और गुरु का साक्षात्कार हो जाये तो इन दोनोमें से सर्वप्रथम किसका अभिवादन करना चाहिये। आदि यह प्रश्न निरर्थक और हास्यास्पद हैं। परमपिता परमात्मा सब गुरुओंका भी गुरु है। वह सर्वत्र व्यापक, सर्वान्तर्यामी है। मानव का मानवी गुरु-अल्पज्ञ तथा एक देशीय है, उसके दर्शन पार्थिव नेंत्रों से हो सकते हैं।

इस प्रसंग मे ऋग्वेद का एक मन्त्रहै। **शतधार०** ॥ ऋ. ३।२६।९

अर्थात् वह परमात्मा पूर्वो का, सृष्टि के आरम्भ के गुरुजनों का भी गुरु है। संसारके सभी गुरु कराल (मृत्यु) काल के गाल मे (बिला) समा जाते हैं। परंतु वह परमात्मा कालातीत हैं। काल का भी काल हैं। और वह हैं सत्योपदेशक। मनुष्य—अल्पज्ञ है; उसे भ्रम हो सकता है। ठगी की कामना भी कर सकता है, धोका दे सकता है, चेले-चेलिया बना कर उनका आर्थिक शोषण कर सकता है। अत: स्वयं बहका होने के कारण, दुसरो को बहका सकता है। परंतु परमात्मा सत्यस्वरूप हैं उसकी वाणी में असत्यका समावेश भी नही हैं, वह सर्वज्ञ हैं, सत्यज्ञान का उपदेश करते हैं।

उसे खोजने के लिये कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं हैं। पत्ता—पत्ता उसका पता दे रहा हैं। देखो ? आंखे खोलो। नहीं दीखता तो उस कृपालु परमात्मा के वेद वचन को सुनो।— “ **पिपृत रोदसी** ” उसे द्यावा पृथ्वी सारे संसार को धारण कर रहा है। उस परमात्मा को प्राप्त करने के लिये कहीं दुसरे स्थान

पर जाने की आवश्यकता नही हैं। वह सर्वत्र विद्यमान है। सारे संसार में, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक हैं। जो सभी स्थानों मे विद्यमान हैं तो उसको सभी जगह प्राप्त किया जा सकता है। वह एक देशी नही हैं। सर्वदेशीय हैं, परंतु इन चर्मचक्षुओं से उसे नहीं देखा जा सकता। उस परमात्मा को मनीषी, कवि, सूक्ष्मदर्शी, अन्तर्यामी कहा हैं। जो उसे आंख से दीखेगा तो वह परमात्मा कभी भी नहीं हो सकता। उसे तो ज्ञान नेत्रसे ही साक्षात्कार किया जा सकता है हृदय में। निराकार परमेश्वर की साकार गुरु से कोई तुलना नहीं की जा सकती। परमात्मा निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्व गुरुओंका गुरु, और आंख आदि का निर्विषय हैं–उसकी तुलना एक देशी, शरीरधारी, अल्पज्ञ गुरु से कैसे हो सकती हैं? मनुष्य को देखा जा सकता हैं, परमात्मा के रुप रहित होने से उसे देखा ही नहीं जा सकता। फिर सारी की सारी कल्पनायें व्यर्थ हैं, कपोलकल्पित हैं। अवैदिक हैं। इन ढोंगी गुरुओं ने एक दोहा बनाकर प्रसिद्ध कर रखा हैं –

गुरु गोविन्द दोनो खडे काके लागौ पांव।
बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो बताय॥

भोले-भाले लोगो को ऐसे–ऐसे मन घडन्त दोहे सुनाकर अपना गुरुडम फैलाते हैं और अज्ञानी स्त्री–पुरुषो को चक्कर में फंसा लेते हैं। ऐसे ढोंगी, पाखण्डी, अन्ध विश्वासी गुरुओं से स्त्री–पुरुषों को बचना चाहिये, और जों गुरुओं के चक्कर में फंसे हुये हैं, उनको ज्ञानी, बुद्धिमान लोग बचायें। तभी जीवन का कल्याण होना। अन्यथा अन्धकार में डूब जाओंगे।

अतः परमात्मा को मनुष्य अपने हृदय में ज्ञान से साक्षात् करें– उसे ही सब गुरुओं का गुरु समझकर उसी की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना कर अपने अमूल्यजीवन को सफल बनाये। मनुष्य

गुरु जो उत्तम शिक्षा देनें वाला हैं। उसका खान–पान आदि सन्मान से आदर करें। उस गुरु की परमात्मा से कोई तुलना नहीं की जा सकती।

आर्य समाज के प्रवर्तक, १९ वीं शताब्दि के महान् क्रान्तिकारी युगप्रवर्तक वैदिक–धर्मोद्धारक महर्षि देव दयानन्दजी महाराजने अपने अमर ग्रन्थ क्रान्तिकारी "सत्यार्थ प्रकाश" के ग्यारहवे समुल्लास में इन ढोंगी, पाखण्डी, गुरुओं की पोल खोली हैं। वह प्रश्नोत्तर के रूप लिखते हैं कि–

प्रश्न–गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

इत्यादि – गुरु महात्म्य तो सच्चा हैं? गुरु के पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करें, वैसा करना, गुरु लोभी हो तो बावन के समान, क्रोधी हो तो नरसिंह के सदृश, मोही हो तो राम के तुल्य, और कामी हो तो कृष्ण के समान गुरु को जानना। चाहे गुरु जी कैसा ही पाप करें तो अश्रद्धा न करनी, सन्त व गुरु के दर्शन को जानें में पग पग में अश्वमेध का फल होता हैं यह बात ठीक हैं या नहीं?

उत्तर–यह बात ठीक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म ये तो परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी भी नहीं हो सकता। यह गुरु महात्म्य गुरु गीता भी एक बडी पोप लीला हैं। गुरु तो माता, पिता, आचार्य और अतिथी होते हैं। उनकी सेवा करनी, उनसे विद्या, शिक्षा लेनी देनी, शिष्य और गुरु का काम हैं। परंतु जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड देना। शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न मानें तो ताडना. दण्ड, प्राण हरण तक भी करने में कुछ दोष नहीं। जो विद्यादि, सद्गुणों में गुरुत्व नहीं है–और झूठ–मूठ, कण्ठी, तिलक वेद–विरुद्ध मन्त्रोपदेश करनें वाले हैं, वे गुरु ही नहीं, किन्तु

गडरिये हैं। जैसे गडरिये अपनी भेंड–बकरियो से दूध आदि प्रयोजन सिद्ध करते हैं, वैसेही शिष्यों के चेले चेलियों के घन हर के वे अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं वे :–

दोहा–गुरु लोभी चेला लालची, दोनो खेले दाव।
भवसागर में डूबते, बैठ पत्थर की नाव॥

गुरु समझता हैं कि चेले–चेलियां कुछ न कुछ देवेंगे ही और चेले–चेलियां समझते हैं कि चलो गुरु झुठे सौगन्ध खाने, आदि पाप से छुडावेंगे ही आदि लालच से दोनो गुरु–चेला कपट मुनि भव सागर के दुःखमे डूब मरते हैं। जैसे पत्थर की नौका मे बैठनेवाले समुद्र मे डूब मरते हैं। ऐसे गुरु और चेलों के मुखपर धूर–राख पडे। उसके पास कोई भी खडा न रहे, वह दु ख सागर में पडेगा–जैसी पोपलीला पुजारी पुराणियों नें चलाई हैं। वैसी इन गडरियों गुरुओं ने भी लीला मचाई हैं। यह–सब काम स्वार्थी लोगों का है। और जो परमार्थी लोग हैं वे आप–दुःख उठाते हुये भी जगत (संसार) का उपकार करना नही छोडते और गुरु माहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी उन्ही लोभी लालची कुकर्मी गुरुओं ने बनाई है।

भारत के अनेक नगरोंमे ऐसे अनेक गुरु है जो स्त्रियों से पैर छुआ कर अपना डल्लू सीधा कर रहे हैं। सुना जाता है कि पानीपत मे एक साधू पहले किसी भी स्त्रीं–पुरुषोंसे पैर नही छूआ करता था। परन्तु अब वह इतने ढोंगी–पाखण्डी हो गये है कि स्त्रिया–माताओ बहना से पैर छुआने में, तथा पैर दबवाने में अपना गौरव समझते है उन्हें पता नहीं है कि माता–बहनोंको परपुरुषका स्पर्श करना भी पाप कहा है। उसका तो सबसे बडा गुरु उसका पति ही है, उसी की सेवा शुश्रुषा तथा आज्ञा का पालन करना तथा बच्चो की देखभाल

तथा शिक्षा–दीक्षा करना ही उसका परम धर्म है। जो गुरु व साधू सन्यासी ऐसा करते हें, उनको अनेक जन्मों ये दुःख ही उठाना पडता हैं और गुरु महात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्हीं लोभी, लालची, कुकर्मी गुरुओं ने बनाई हैं।

एक समय था जब गुरु परम्परा इसीलिये थी कि मनुष्य ज्ञानी होकर अपना और संसार का लाभ व उपकारकरता था। परन्तु आज ढोंगी गुरु परम्परा एक प्रकार की गडरियों की परम्परा हैं। जिसका मुख्य प्रयोजन यह है कि संसार के मनुष्य भेडों के सदृश होकर अपने गडरियों के पीछे चला करें, या मदारियों की परम्परा हैं–जैसे एक मदारी बन्दरों को उंगलियों पर नचाता हैं। इसी प्रकार वह ढोंगी गुरु अपने शिष्यों को उगलियों पर नचाया करते हैं। मनुष्यको मनुष्यत्त्व से गिराने और भेड बनाने के लिये अन्धविश्वास और झूठी श्रद्धा से अधिक उपयोगी कोई वस्तु नही है। जो मनुष्य यह चाहता हैं कि दुसरे जन्म मे उसको भेड की योनी मिले तो उसको चाहिये कि अपनी बुद्धि को ताक में रखकर किसी धूर्त गुरु के पीछे लग ले। यह गुरु उसके कान में एक मन्त्र फूंक देगा, और उसको उपदेश कर देगा कि देखो ? हम तुम्हारे गुरु हैं। हम जैसा कहे वैसा ही तुम किया करो। इन गुरुओं की लीला अपार हैं। शिष्यों की श्रद्धा को बढाने के लिये उनको अपना झूठा खिलाते हैं। वे समझते है कि यदि ये शिष्य हमारा झूठा खा लेगे तो समझलो कि उन्होने अपनी बुद्धि को सब प्रकार से हमारे समर्पण कर दिया। चेले और चेलियों को झूठा खिलाने पृथा आज कल भी हैं।

मुझे कई वर्षों तक पूना (बम्बई) महाराष्ट्र में वैदिक-धर्म प्रचारार्थ रहना पडा, आर्य समाज में धर्म प्रचार का कार्य करता था–मुझे एक परिवार मे जाने का निमन्त्रण प्राप्त हुआ,

सहर्ष मै गया—मैंने वहां क्या देखा कि--एक महात्मा जी—जिसका सिर घुटा हुआ, १ फूट पेट निकला हुआ लाल—चोगा पहने हुये, एक ऊंचे से तख्त पर बैठे हुये थे, उनके सामने वहुत सी माताये—बहनें श्रद्धा भाव से बैठी हुयी थी,—मेरे जाने पर वह साधु कुछ नाराजगी प्रगट करने लगे – परन्तु एक माता ने यह कहते हुयें कि आईये पण्डित जी बैठिये। खडी हो गई, और मुझे सन्मान देते हुये, साधु के पास तख्त पर बैठा दिया। उस साधु की हिम्मत नहीं हुई कि वह मुझे उठकर नीचे बैठने को कहता। खैर कार्यक्रम आरम्भ हुआ। माताओं तथा बहनो नें गुरु—महिमा के २–३ भजन गाये, तत्पश्चात मेरा " विश्वानि देव० "इस मन्त्रपर ३० मिनट उपदेश हुआ। तत्पश्चात् महात्माजी ४० मिनट बोले। उपदेश था कि गुरु के बगैर मुक्ति नही है, जो स्त्रि—पुरुष गुरु—धारण कर तन, मन व धन गुरु को समर्पित कर देते है वह नाना जन्मों में उत्तम—उत्तम सुखोको प्राप्त करते हुये परम गति को प्राप्त होते हैं। आदि कहा। सारे भाषण का सारांश यही था – जो मैंने उपरोक्त वर्णन किया है। इसके बाद महात्मा जी की आरती उतारी गई, आरती सबको दी गई ७०–८० रुपया के लगभग आरती मे आया। एक नौजवान माता ने महात्माजी के पैर धोये, पैर धोये पानी को एक तांबे के बर्तन में रखा गया—जो कि सभी उपस्थित माता—बहनों को चरणामृत के रुप में पान कराया गया। तत्पश्चात् महात्माजी को भोजन एक थाली में लाकर दिया गया। भोजन इतना था कि ४–५ व्यक्ति आराम से भोजन कर अपनी तृप्ती कर सकते थे। मेरी लिये भी एक थाली भोजन की आ गई। हम दोनो भोजन करने लगे, मै भोजन कर चुका था – महात्माजी अभी भोजन कर ही रहे थे। ३० मिनट उनके भोजन करने मे लगे। उन्होने बहुत सा भोजन झूठा छोड दिया। उस झूठे भोजन को सभी माता--बहनों ने बडी श्रद्धा भक्ति से प्रसाद

समझकर ग्रहण किया और अन्त मे सभी स्त्रियां उस महात्मा के पैर छूकर चली गई। यह सत्संग का क्रम लगातार एक सप्ताह तक भिन्न २ परिवारों में चलता रहा। यह एक उदाहरण मैंने पाठकों की जानकारी के लिये दिया है। ऐसे न जाने कितने ही उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। जिनसे यह जाना जा सकता है कि कितना गुरुडम पाखण्ड आज इस देश में फैल रहा है। इसतरह स्त्रियां व पुरुष पाखण्डी गुरुओं के चक्कर में फंसकर उनका झूठन खाकर अपने को गौरवान्वित समझ रहे हैं।

गुरु महात्म्य के ढोंग को बढाने के लिये गुरु अधिक भोजन में अपना झूठा ग्रास डाल देते है इस प्रकार उच्छिष्ट पदार्थ सब चेले-चेलियो को बांट दिया जाता हैं। और वह चेले-चेलियां अपना अहोभाग्य समझते हैं कि हम को गुरु जी महाराज (झूठन) की प्रसादी मिल गई। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के दसवे समुल्लास मे लिखा है कि

प्रश्न : एक साथ खाने में कुछ दोष है या नहीं ?

उत्तर : दोष हैं, क्यों कि एक के साथ दुसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदि के साथ खानेसे अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड जाता हैं। वैसे ही दुसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता हैं सुधार नहीं। इसी लिये–

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैवतथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्नचोच्छिष्टः क्वचितव्रजेत ॥

(मनु० २।५६)

अर्थात्–न किसी को अपना झूठा पदार्थ दे, और न किसी के भोजन के बीच आप खावे, न अधिक भोजन करें, और न भोजन

किये पश्चात हाथ मुख धोये बिना कही इधर उधर जायें। आदि हमारे धर्मशास्त्रकारों ने किसी का भी झूठा खाना निषेध किया है। अतः हम किसी का भी झूठा न खायें–चाहे गुरु हों या कोई अन्य।

यदि गुरुओं, मठाधीषों, पीर पैगम्बरों, मुजाविरों और भविष्य-वक्ताओं की करतुतों पर विचार किया जाये तो ज्ञात होगा कि बहुत से पन्थों तथा मत-मतान्तरों के संस्थापक भी इसी प्रकार के चालाक मनुष्य हुये हैं जो अन्ध विश्वास का जाल फैला कर मनुष्यों को भेड बनाया करते थे, और लोग अक्ल को दखल न देकर उनकी मिथ्या बातोंपर विश्वास कर बैठते हैं।

सैकडों ठग, संन्यासी, साधू, पाखण्डी, ढोंगी, गुरु का भेष बनाये नगरो और ग्रामों मे फिरा करते हैं और लोगोको धोखा देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते फिरते हैं। ऐसे ढोंगी, पाखण्डी गुरुओं से स्त्री-पुरुषों को सावधान रहना चाहिये।

वस्तुतः परमात्माको मनुष्य हृदय में अष्टांग योग शास्त्र ज्ञान से साक्षात् करे और उसे ही सब गुरुओं का गुरु समझकर उसी की ही स्तुति, प्रार्थना उपासना और आराधना करे। गुरु जो उत्तम शिक्षा देने वाला हैं। उसका खान पान सन्मान से आदर करे। उसकी परमात्मा से कोई तुलना नहीं हैं।

जो विद्यादि सद्‌गुणों में गुरुत्व नही हैं। झूठ–मूठ कण्ठी, तिलक, वेद–विरुद्ध मन्त्रोपदेश करनेंवाले हैं। वे गुरु ही नहीं, किन्तु गडरिये हैं।

(सत्यार्थ प्रकाश ११ वा समुल्लास)